श्री महावीराय नमः

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जय गुरु हीरा

जय गुरु मान

जैन धर्म चन्द्रिका

पंचम कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर -342 001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490 फैक्स : 0291-2630490, 2636763

सूत्र विभाग :-

प्रतिक्रमण सूत्र: पाठों के शब्दार्थ
इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते!	हे भगवान! चाहता हूँ, यानी मेरी इच्छा है।
तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे	आपके द्वारा आज्ञा मिलने पर।
देवसियं पडिक्कमणं	दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण को।
ठाएमि	करता हूँ।
देवसिय नाण दंसण	दिवस सम्बन्धी ज्ञान दर्शन।
चरित्ताचरित्त	श्रावक व्रत।
तव	तप।
अइयार	अतिचारों का।
चिंतणत्थं	चिन्तन करने के लिए।
करेमि काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग करता हूँ।

इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं	मैं कायोत्सर्ग करना चाहता हूँ।
जो मे देवसिओ	जो मैंने दिवस सम्बन्धी।
अइयारो कओ	अतिचार (दोष) सेवन किये हैं चाहे वे।
काइओ, वाइओ, माणसिओ	काया, वचन और मन सम्बन्धी।
उस्सुत्तो	सूत्र सिद्धान्त के विपरीत उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो।
उम्मग्गो	जिनेन्द्र प्ररुपित मार्ग से विपरीत उन्मार्ग का कथन किया व आचरण किया हो।
अकप्पो, अकरणिज्जो	अकल्पनीय, (नहीं कल्पे वैसा) नहीं करने योग्य कार्य किए हों। ये कायिक-वाचिक अतिचार हैं, इसी प्रकार।
दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ	मन से कर्म-बंध हेतु रूप दुष्ट ध्यान व किसी प्रकार का खराब चिंतन किया हो।
अणायारो, अणिच्छियव्वो	अनाचार सेवन (व्रत भंग) किया व नहीं चाहने योग्य की वांछा की हो।
असावगपाउग्गो	श्रावक धर्म के विरुद्ध (अश्रावकपने) आचरण किया हो।
नाणे तह दंसणे	ज्ञान तथा दर्शन।
चरित्ताचरित्ते, सुए	श्रावक धर्म, सूत्र सिद्धान्त।
सामाइए	सामायिक में।

तिण्हं गुत्तीणं	तीन गुप्ति के गोपनत्व का।
चउण्हं कसायाणं	चार कषाय के सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा का।
पंचण्हमणुव्वयाणं	पाँच अणुव्रत।
तिण्हं गुणव्वयाणं	तीन गुणव्रत।
चउण्हं सिक्खावयाणं	चार शिक्षा व्रत रूप।
बारस विहस्स सावग धम्मस्स	बारह प्रकार के श्रावक धर्म का।
जं खंडियं जं विराहियं	जो मेरे सर्व रूप से खण्डन हुआ हो, देश (आंशिक) रूप से विराधना हुई हो तो।
जो मे देवसिओ अइयारो	जो मैंने दिवस सम्बन्धी कोई
कओ	अतिचार दोष किये हों तो।
तस्स मिच्छा मि दुक्कडं	वे मेरे दुष्कृत कर्मरूप पाप, मिथ्या-निष्फल हो।

आगमे तिविहे का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते	आगम तीन प्रकार के कहे गये हैं।
तं जहा	वे इस प्रकार हैं जैसे -
सुत्तागमे, अत्थागमे	सूत्र (मूल पाठ) रूप, अर्थ रूप आगम।
तदुभयागमे	दोनों (मूल अर्थ युक्त) रूप आगम।
जं	जो इस प्रकार हैं -
वाइद्धं	आगम-पाठों में जो क्रम हैं उसे छोड़कर अर्थात् पद, अक्षर को आगे-पीछे करके पढ़ा हो।
वच्चामेलियं	एक सूत्र का पाठ अन्य सूत्र में मिलाकर (अविराम की जगह विराम लेकर अथवा स्व कल्पना से सूत्र, भाष्य रचकर सूत्र को मिलाकर) पढ़ा गया हो।
हीणक्खरं, अच्चक्खरं	अक्षर घटा (कम) करके व बढ़ाकर बोला गया हो।
पयहीणं, विणयहीणं	पद को कम करके, विनयरहित (अनादर भाव से) पढ़ा हो।
जोगहीणं	मन, वचन व काया के योग रहित पढ़ा हो।
घोसहीणं	उदात्त आदि के उचित घोष बिना पढ़ा हो।
सट्ठुदिण्णं	शिष्य की उचित शक्ति से न्यूनाधिक ज्ञान दिया हो।
दुट्ठुपडिच्छियं	दुष्ट भाव से ग्रहण किया हो।
अकाले कओ सज्झाओ	अकाल में (असमय) स्वाध्याय किया हो।

काले न कओ सज्झाओ	काल में स्वाध्याय न किया हो।
असज्झाइए सज्झायं	अस्वाध्याय के समय में स्वाध्याय किया हो।
सज्झाइए न सज्झायं	स्वाध्याय के समय में स्वाध्याय न किया हो।

दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवं	जीवन पर्यन्त अरिहंत मेरे देव हैं।
सुसाहुणो गुरुणो	सुसाधु-निर्ग्रन्थ गुरू हैं।
जिण पण्णत्तं तत्तं	जिनेश्वर कथित तत्त्व (धर्म) सार रूप है।
इअ सम्मत्तं मए गहियं	इस प्रकार का सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।
परमत्थ संथवो वा	परमार्थ का परिचय अर्थात् जीवादि तत्त्वों की यथार्थ जानकारी करना।
सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वा वि	परमार्थ के जानकार की सेवा करना।
वावण्ण कुदंसण वज्जणा	समकित से गिरे हुए तथा मिथ्यादृष्टियों की संगति छोड़ने रूप।
य सम्मत्त सद्दहणा	ये इस सम्यक्त्व के (में) श्रद्धान हैं (मेरी श्रद्धा बनी रहे)।
इअ सम्मत्तस्स	इस सम्यक्त्व के।
पंच अइयारा पेयाला	पाँच अतिचार रूप प्रधान दोष हैं जो।
जाणियव्वा	जानने योग्य हैं किन्तु।
न समायरियव्वा	आचरण करने योग्य नहीं है।
तं जहा ते आलोउं	वे इस प्रकार हैं, उनकी मैं आलोचना करता हूँ।
संका	श्री जिन वचन में शंका की हो।
कंखा	परदर्शन की आकांक्षा की हो।
वितिगिच्छा	धर्म के फल में सन्देह किया हो।
पर पासंड पंससा	पर पाखण्डी (मिथ्यामतियों) की प्रशंसा की हो।
पर पासण्ड संथवो	पर पाखण्डी (मिथ्यामतियों) का परिचय किया हो।

बारह स्थूल के कठिन शब्दों के अर्थ

प्राणातिपात	प्राणों से रहित करना (मारना)।
गाढ़ा	मजबूत (दृढ़-कठोर)।
गाढ़ा घाव	गहरा घाव हो, वैसा मारा हो।
अवयव	चाम आदि अंग-उपांग।
कूड़ा आल	व्यर्थ का गलत व झूठा दोषारोपण।

मर्म	चुभे जैसे अन्तर की गुप्त सत्य बात।
अधिकरण	हिंसा के साधन यानी हिंसाकारी शस्त्र।

अठारह पाप स्थान का पाठ

प्राणातिपात	जीव की हिंसा करना।
मृषावाद	झूठ बोलना।
अदत्तादान	चोरी करना।
मैथुन	कुशील का सेवन करना।
परिग्रह	मूर्च्छा, धनादि द्रव्य पर ममत्व रखना (धन, धान्यादि का संग्रह करना)।
क्रोध	रोष, गुस्सा।
मान	अहंकार-घमंड।
माया	छल - कपट।
लोभ	लालच - तृष्णा।
राग	प्रेम, स्नेह।
द्वेष	वेर - विरोध।
कलह	क्लेश - झगड़ा।
अभ्याख्यान	झूठा कलंक लगाना।
पैशुन्य	चुगली करना।
परपरिवाद	दूसरों की निंदा करना।
रति-अरति	अनुकूल विषयों में आनन्द, प्रतिकूल विषयों में खेद।
मायामृषावाद	कपट सहित झूठबोलना।
मिथ्यादर्शनशल्य	झूठी मान्यता रूप काँटा, अर्थात् देव गुरू धर्म की विपरीत श्रद्धा।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो	चाहता हूँ हे क्षमाश्रमण!
वंदिउं जावणिज्जाए	वन्दना करना शक्ति के अनुसार।
निसीहियाए	शरीर को पाप-क्रिया से हटा करके।
अणुजाणह मे	आप मुझे आज्ञा दीजिए।

मिउग्गहं	मितावग्रह (परिमित यानी चारों ओर साढ़े तीन हाथ भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा पाकर शिष्य बोले कि हे गुरूदेव मैं।
निसीहि	समस्त सावद्य व्यापारों को तीनों योगों से रोक कर।
अहो कायं	आपकी अधोकाया (चरणों) को।
काय	मेरी काया (हाथ और मस्तक) से
संफासं	स्पर्श करता हूँ (छूता हूँ)।
खमणिज्जो भे किलामो	इससे आपको मेरे द्वारा अगर कष्ट पहुँचा हो तो उस कष्ट प्रदाता को अर्थात् मुझे क्षमा करें।
अप्पकिलंताणं	हे गुरु महाराज! अल्प ग्लान अवस्था में रहकर।
बहु सुभेणं	बहुत शुभ क्रियाओं से सुख-शान्ति पूर्वक।
भे दिवसो वइक्कंतो ?	आपका दिवस बीता है न?
ज त्ता भे ?	आपकी संयम रूप यात्रा निराबाध है न?
ज व णि ज्जं च भे	आपका शरीर, इन्द्रिय और मन पीड़ा (बाधा) से रहित है न?
खामेमि खमासमणो	हे क्षमाश्रमण क्षमा चाहता हूँ।
देवसियं वइक्कमं	जो दिवस भर में अतिचार (अपराध) हो गये हैं उसके लिए।
आवस्सियाए पडिक्कमामि	आपकी आज्ञा रूप आवश्यक क्रियाओं के आराधन में दोषों से निवृत्ति (बचने का प्रयत्न) रूप प्रतिक्रमण करता हूँ।
खमासमणाणं देवसिआए	आप क्षमावान श्रमणों की दिवस सम्बन्धी।
आसायणाए	आशातनाएँ।
तित्तिसन्नयराए	तेतीस प्रकार में से कोई भी।
जं किंचि मिच्छाए	जिस किसी भी मिथ्या भाव से किया या हुआ (चाहे वह)।
मणदुक्कडाए	मन के अशुभ परिणामों से।
वयदुक्कडाए	दुष्ट वचनों से
कायदुक्कडाए	शरीर की दुष्ट चेष्टाओं से।
कोहाए माणाए मायाए लोहाए	क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत हो सेवन किया या हुआ और,
सव्वकालियाए	सर्वकाल (भूत, वर्तमान, भविष्य) में।
सव्व मिच्छोवयाराए	सवर्था मिथ्योपचार से पूर्ण।
सव्व धम्माइक्कमणाए	सकल धर्मों का उल्लंघन करने वाली।
आसायणाए	आशातनाओं का सेवन किया या हुआ।

जो मे देवसिओ	जो मैंने दिवस सम्बन्धी।
अइयारो कओ	अतिचार (अपराध) किया।
तस्स खमासमणो।	उसका हे क्षमाश्रमण।
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ।
निंदामि गरिहामि	आत्म-साक्षी से निन्दा व आपकी (गुरु की) साक्षी से गर्हा करता हूँ।
अप्पाणं वोसिरामि	दूषित आत्मा को वोसिराता हूँ।

तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स	उन सब दिवस सम्बन्धी।
अइयारस्स	अतिचारों का जो।
दुब्भासिय दुच्चिंतिय	दुर्वचन व बुरे चिन्तन से।
दुच्चिट्ठियस्स	तथा कायिक कुचेष्टा से किये गये हैं।
आलोयंतो पडिक्कमामि	उन अतिचारों की आलोचना करता हुआ उनसे अलग होता हूँ।

चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं	चार मंगल हैं।
अरिहंता मंगलं	अरिहन्त मंगलं हैं।
सिद्धा मंगलं	सिद्ध मंगल हैं।
साहु मंगलं	साधु मंगल हैं।
केवली पण्णत्तो धम्मो	केवली प्ररूपित दया धर्म
मंगलं	मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	चार लोक में उत्तम हैं।
अरिहंता लोगुत्तमा	अरिहन्त लोक में उत्तम हैं।
सिद्धा लोगुत्तमा	सिद्ध लोक में उत्तम हैं
साहु लोगुत्तमा	साधु लोक में उत्तम हैं।
केवली पण्णत्तो धम्मो	केवली प्ररूपित धर्म।
लोगुत्तमो	लोक में उत्तम है।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि	चार शरणों को ग्रहण करता हूँ।
अरिहंते सरणं पव्वज्जामि	अरिहंत भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ।
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि	सिद्ध भगवान की शरण ग्रहण करता हूँ।

साहू सरणं पव्वज्जामि	साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ।
केवली पण्णत्तं धम्मं	केवली प्ररुपित दया धर्म की
सरणं पव्वज्जामि	शरण ग्रहण करता हूँ।

बारह अणुव्रत

-:: 1 ::-

अणुव्रत	अणुव्रत (अणु यानी महाव्रत की अपेक्षा छोटा व्रत)।
थूलाओ	स्थूल (बड़ी)।
पाणाइवायाओ	प्राणातिपात (जीव हिंसा) से।
वेरमणं	विरत (निवृत्त) होता हूँ जैसे।
त्रस जीव	चलते फिरते प्राणी हैं, चाहे वे।
बेइन्द्रिय	दो इन्द्रिय वाले।
तेइन्द्रिय	तीन इन्द्रिय वाले।
चउरिन्द्रिय	चार इन्द्रिय वाले।
पंचेन्द्रिय	पाँच इन्द्रिय वाले।
संकल्प	मन में निश्चय करना।
सगे संबंधी	सम्बन्धी जनों का।
स्वशरीर	अपने शरीर के उपचारार्थ।
सापराधी	अपराध सहित त्रस प्राणी की हिंसा को छोड़ शेष।
निरपराधी	अपराध रहित प्राणी की हिंसा का।
आकुट्टी	मारने की भावना से।
हनने	मारने का।
पच्चक्खाण	त्याग करता हूँ।
जावज्जीवाए	जीवन पर्यन्त।
दुविहं तिविहेणं	दो करण, तीन योग से अर्थात्।
न करेमि, न कारवेमि	स्वयं करूँगा नहीं, दूसरों से कराऊँगा नहीं।
मणसा वयसा कायसा	मन, वचन, काया से।
बंधे	गाढ़े बन्धन से बांधा हो।
वहे	वध (मारा या गाढ़ा घाव घाला हो)।
छविच्छेए	अंगोपांग को छेदा हो।
अइभारे	अधिक भार भरा हो।

भत्तपाणविच्छेए	भोजन पानी में रुकावट की हो।

-:: 2 ::-

कन्नालीए	कन्या या वर सम्बन्धी।
गोवालीए	गाय आदि पशु सम्बन्धी।
भोमालीए	भूमि, भवन आदि सम्बन्धी।
णासावहारो	धरोहर दबाने के लिए झूठबोलना।
कूडसक्खिज्जे	झूठी साक्षी देना।
सहस्सब्भक्खाणे	बिना विचारे किसी पर झूठा आल (दोष) देना।
रहस्सब्भक्खाणे	गुप्त बात प्रकट करना।
सदारमंतभेए	अपनी स्त्री या पुरुष की गुप्त बात प्रकट करना।
मोसोवएसे	झूठा उपदेश देना।
कूडलेहकरणे	झूठा लेख लिखना।

-:: 3 ::-

थूलाओ अदिण्णादाणाओ	स्थूल बिना दी वस्तु लेने रूप।
वेरमणं	चोरी से निवृत्त।
खात खनकर	दीवार में सेंध लगाकर।
धणियाति	मालिक की।
मोटी वस्तु	बड़ी-कीमती वस्तु।
जान कर लेना	अधिकारी की जानकारी होने पर भी उसको लेने का।
सगे संबंधी	पारिवारिक जन की बिना आज्ञा कोई वस्तु लेनी पड़े।
व्यापार संबंधी	व्यवसाय सम्बन्धी तथा
निर्भ्रमी	शंका रहित।
तेनाहडे	चोर की चुराई वस्तु ली हो।
तक्करप्पओगे	चोर को सहायता दी हो।
विरूद्धरज्जाइक्कमे	राज्य विरूद्ध कार्य किया हो।
कूडतुल्ल कूडमाणे	खोटा तोल, खोटा माप किया हो।
तप्पडिरूवगववहारे	वस्तु में भेल-संभेल (मिलावट) की हो।

-:: 4 ::-

सदार संतोसिए	अपनी पत्नी में संतोष के सिवाय।
अवसेसं मेहुणविहिं	शेष सभी प्रकार की मैथुन विधि का।

पच्चक्खामि	त्याग करता हूँ।
इत्तरिय परिग्गहियागमणे	अल्पवय वाली परिग्रहीता के साथ गमन करना। अल्प समय के लिए रखी हुई के साथ गमन करना।
अपरिग्गहियागमणे	परस्त्री या सगाई की हुई के साथ गमन करना।
अनंगकीडा	काम सेवन योग्य अंगों के सिवाय अन्य अंगों से कुचेष्टा करना।
परविवाह करणे	दूसरों का विवाह करवाना।
कामभोगा तिव्वाभिलासे	काम-भोगों की प्रबल इच्छा करना।

-:: 5 ::-

यथा परिमाण	जैसी मर्यादा की है।
खेत्त वत्थुप्पमाणाइक्कमे	खुली भूमि (खेत आदि) और घर दुकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।
हिरण्ण सुवण्णप्पमाणाइक्कमे	चाँदी-सोने के परिमाण का अतिक्रमण करना।
धण धण्णप्पमाणाइक्कमे	रोकड़, धान्य-अनाज आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।
दुप्पय चउप्पयप्पमाणाइक्कमे	नौकर, पशु आदि के परिमाण का अतिक्रमण करना।
कुवियप्पमाणाइक्कमे	घर की सारी सामग्री- बर्तन, फर्नीचर आदि की मर्यादा का उल्लंघन किया हो।

-:: 6 ::-

उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे	ऊँची दिशा का परिमाण उल्लंघन किया हो।
अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे	नीची दिशा का परिमाण उल्लंघन किया हो।
तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे	तिरछी दिशा का परिमाण उल्लंघन किया हो।
खित्तवुड्ढी	एक दिशा का क्षेत्र घटाकर अन्य दिशा का बढ़ाया हो।
सइ अंतरद्धा	क्षेत्र के परिमाण में संदेह होने पर आगे चला हो।

-:: 7 ::-

उपभोग	एक बार भोगा जा सके जैसे- अन्न, पानी, आदि।
परिभोग	अनेक बार भोगा जा सके, जैसे- वस्त्र, आभूषण आदि।
विहिं पच्चक्खायमाणे	विधि का (पदार्थों की जाति का) त्याग करते हुए।
उल्लणियाविहि	अंग पोंछने के वस्त्र (अंगोछा आदि)।
दंतणविहि	दाँतोन के प्रकार।
फलविहि	केशादि धोने के उपयोगी आँवला, अरीठा आदि फल के प्रकार।
अब्भंगणविहि	मर्दन के तेल के प्रकार।
उवट्टणविहि	उबटन, पीठी आदि।
मज्जणविहि	स्नान-संख्या एवं जल का परिमाण।
वत्थविहि	वस्त्र, पहनने योग्य कपड़े।

विलेवणविहि	विलेपन (लेप) चन्दन आदि।
पुप्फविहि	फूल, फूलमाला आदि।
आभरणविहि	हार, अँगूठी आदि आभूषण।
धूवविहि	धूप, अगर, तगर आदि।
पेज्जविहि	पेय, दूध आदि पदार्थों की मर्यादा।
भक्खणविहि	मिठाई, घेवर आदि।
ओदणविहि	पकाये हुए चावल आदि।
सूपविहि	मूँग, चने की दाल आदि।
विगयविहि	दूध, दही, घी आदि।
सागविहि	शाक, सब्जी आदि।
महुरविहि	मधुर फल आदि।
जीमणविहि	रोटी, पुड़ी, रायता, बड़ा, पकोड़ी आदि जीमने के द्रव्यों के प्रकार।
पाणीयविहि	पीने योग्य पानी।
मुखवासविहि	लोंग, सुपारी आदि।
वाहणविहि	वाहन (घोड़ा, मोटर आदि)।
उवाणहविहि	जूते, मौजे आदि।
सयणविहि	सोने-बैठने योग्य पलंग, कुर्सी आदि।
सचित्तविहि	जीव सहित वस्तु जैसे - नमक आदि।
दव्वविहि	द्रव्य (खाने-पीने के पदार्थों की संख्या) की विधि (मर्यादा)।
दुविहे	दो प्रकार।
पण्णत्ते	कहा गया है।
तं जहा	वह इस प्रकार है।
भोयणाओ	भोजन की अपेक्षा से।
य	और
कम्मओ य	कर्म की अपेक्षा से।
भोयणाओ	भोजन सम्बन्धी नियम के।
समणोवासएणं	श्रमणोपासक (श्रावक) के।
पंच अइयारा	पाँच अतिचार।
सचित्ताहारे	सचित्त वस्तु का भोजन करना।
सचित्तपडिबद्धाहारे	सचित्त (वृक्षादि)से संबंधित (लगे हुए गोंद, पके फल आदि खाना) वस्तु भोगना।
अप्पउली ओसहि भक्खणया	अचित्त नहीं बनी हुई वस्तु का आहार करना या जिसमें जीव के प्रदेशों का सम्बन्ध हो,

	ऐसी तत्काल पीसी हुई या मर्दन की हुई वस्तु का भोजन करना।
दुप्पउलि ओसहि भक्खणया	दुष्पक्व-अधपके या अविधि से पके हुए उम्बी, भुट्टे आदि का आहार करना।
तुच्छोसहि भक्खणया	तुच्छ औषधि (जिसमें सार भाग कम हो उस वस्तु) का भक्षण करना।
कम्मओ य णं	कर्मादान की अपेक्षा।
समणोवासएणं	श्रावकों के जो।
पण्णरस्स कम्मादाणाइं	15 कर्मादान हैं वे।
जाणियव्वाइं	जानने योग्य हैं।
न समायरियव्वाइं	परन्तु आदरने योग्य नहीं है।
तं जहा ते आलोउं	वे इस प्रकार हैं, जैसे।
इंगालकम्मे	ईंट, कोयला, चूना आदि बनाना।
वणकम्मे	वृक्षों को काटना।
साडीकम्मे	गाडियाँ आदि बनाकर बेचना।
भाडीकम्मे	गाडियाँ आदि किराये पर देना।
फोडीकम्मे	पत्थर आदि फोड़ने का व्यापार करना।
दंतवाणिज्जे	दाँत आदि का व्यापार करना।
लक्खवाणिज्जे	लाख आदि का व्यापार करना।
रसवाणिज्जे	शराब आदि रसों का व्यापार करना।
केसवाणिज्जे	दास-दासी, पशु आदि का व्यापार करना।
विसवाणिज्जे	विष, सोमल, संखिया आदि तथा शस्त्रादि का व्यापार करना।
जंतपीलणकम्मे	तिल आदि पीलने के यंत्र चलाना।
निल्लंछणकम्मे	नपुंसक बनाने का काम करना।
दवग्गिदावणया	जंगल में आग लगाना।
सरदहतलायसोसणया	सरोवर, तालाब आदि सुखाना।
असई-जण-पोसणया	वेश्या आदि का पोषण कर दुष्कर्म से द्रव्य कमाना।

-:: 8 ::-

अणट्ठादण्ड	बिना प्रयोजन ऐसे काम करना, जिसमें जीवों की हिंसा होती है।
विरमण व्रत,	निवृत्ति रूप व्रत लेता हूँ।
चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते	अनर्थ कार्य चार प्रकार के हैं
तं जहा	जो इस प्रकार है-
अवज्झाणायरिये	अपध्यान (आर्त्तध्यान,रौद्रध्यान) का आचरण करने रूप।

पमायायरिये	प्रमाद का आचरण करने रूप।
हिंसप्पयाणे	हिंसा का साधन।
पावकम्मोवएसे	पापकारी कार्य का उपदेश देने रूप।
एवं आठवाँ अणट्ठादण्ड	इस प्रकार के आठवें व्रत में अनर्थ दंड का।
सेवन का पच्चक्खाण	सेवन करने का त्याग करता हूँ। (सिवाय आठ आगार रखकर के जैसे-)
आए वा	आत्मरक्षा के लिए।
राए वा	राजा की आज्ञा से।
नाए वा	जाति आदि के दबाव से।
परिवारे वा	परिवार वालों के दबाव से।
देवे वा	देव के उपसर्ग से।
नागे वा	नाग के उपद्रव से।
जक्खे वा	यक्ष के उपद्रव से।
भूए वा	भूत के उपद्रव से।
एत्तिएहिं	इस प्रकार के अनर्थ दण्ड का सेवन करना पड़े तो
आगारेहिं	आगार रखता हूँ।
अन्नत्थ	उपर्युक्त आगारों के सिवाय।
कंदप्पे	कामविकार बढ़ाने वाली कथा की हो।
कुक्कुइए	भांड की तरह मुँह आदि से कुचेष्टा की हो।
मोहरिए	निरर्थक वचन बोला हो।
संजुत्ताहिगरणे	हिंसा के साधन जोड़कर रखे हों।
उवभोग परिभोगाइरित्ते	भोगोपभोग की चीजें अधिक बढ़ाई हों।

-:: 9 ::-

मणदुप्पणिहाणे	मन से दुष्ट विचार किए हों।
वयदुप्पणिहाणे	दुष्ट वचन बोले हों।
कायदुप्पणिहाणे	काया से सावद्य क्रिया की हो।
सामाइयस्स सइ अकरणया	सामायिक की स्मृति न की हो।
सामाइयस्स	सामायिक।
अणवट्ठियस्स	समय पूर्ण हुए बिना
करणया	पाली हो।

-:: 10 ::-

देसावगासिक	मर्यादाओं का संक्षेप (कम) करना।

जाव अहोरत्तं	एक दिन-रात पर्यन्त।
आणवणप्पओगे	मर्यादा किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को आज्ञा देकर मँगाना।
पेसवणप्पओगे	परिमाण किये हुए क्षेत्र से आगे की वस्तु को मँगवाने के लिए या लेन-देन करने के लिए अपने नौकर आदि को भेजना या सेवक के साथ वस्तु बाहर भेजना।
सद्दाणुवाए	सीमा से बाहर के मनुष्य को खाँसकर या और किसी शब्द के द्वारा अपना ज्ञान कराना।
रूवाणुवाए	रूप दिखाकर सीमा से बाहर के मनुष्य को अपने भाव प्रकट किये हों।
बहिया पुग्गल पक्खेवे	बुलाने के लिए कंकर आदि फेंकना।

-:: 11 ::-

असणं	दाल, भात, रोटी, अन्न तथा शरबत, दूध आदि खाने के पदार्थ।
पाणं	जल-धोवण, गर्म आदि पीने का पानी।
खाइमं	फल, मेवा आदि।
साइमं	लोंग, सुपारी, इलायची, चूर्ण आदि भोजन के बाद खाने लायक मुखवास के पदार्थ।
अबंभ सेवन	मैथुन (कुशील-व्यभिचार) सेवन।
अमुक मणि सुवर्ण	मणि, मोती तथा सोने-चाँदी के आभूषण आदि।
माला	फूल माला।
वण्णग	सुगन्धित चूर्ण आदि।
विलेवण	चन्दन आदि का लेप।
सत्थ	तलवार आदि शस्त्र।
मूसलादिक	मूसल आदि औजार।
सावज्जजोग	पाप सहित व्यापार।
अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय	शय्या संथारा (वस्त्रादि) न देखा हो
सेज्जासंथारए	अथवा अच्छी तरह न देखा हो।
अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय	शय्या संथारा पूँजा न हो अथवा
सेज्जासंथारए	अच्छी तरह से न पूँजा हो।
अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय	मल-मूत्र आदि त्यागने-परठने की
उच्चारपासवण भूमि	भूमि न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो।
अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय	मल-मूत्र आदि त्यागने-परठने की भूमि न
उच्चारपासवण भूमि	पूँजी हो अथवा अच्छी तरह से न पूँजी हो।
पोसहस्स सम्मं	पौषध का सम्यक् प्रकार से
अणणुपालणया	अनुपालन न किया हो।

-:: 12 ::-

अतिथि संविभाग	जिसके आने की कोई तिथि या समय नियत नहीं है, ऐसे अतिथि साधु को अपने लिये तैयार किये हुए भोजन आदि में से कुछ हिस्सा देना।
समणे	श्रमण-साधु।
णिग्गंथे	निर्ग्रथ-पंच महाव्रत धारी को।
फासुयएसणिज्जेणं	प्रासुक (अचित्त) एषणीय (उद्गम आदि दोष रहित)।
असण पाण खाइम साइम	असन, पान, खादिम, स्वादिम।
वत्थ पडिग्गह कंबल	वस्त्र पात्र, कम्बल।
पायपुंछणेणं	पादपोंछन (पाँव पोंछने का रजोहरण आदि)।
पाडिहारिय पीढ फलग	वापिस लौटा देने योग्य- (जिस वस्तु को साधु कुछ काल तक रख कर बाद में वापिस लौटा देते हैं)। चौकी, पट्टा आदि।
सेज्जासंथारएणं	शय्या के लिए संस्तारक-तृण आदि का आसन।
ओसह भेसज्जेणं	औषध और भेषज (कई औषधियों के संयोग से बनी हुई गोलियाँ) आदि।
पडिलाभेमाणे	देता हुआ (बहराता हुआ)।
विहरामि	रहूँ।
सचित्त निक्खेवणया	साधु को नहीं देने की बुद्धि से अचित्त वस्तु को सचित्त जल आदि पर रखना।
सचित्त पिहणया	अचित्त (निर्दोष-सूझती) वस्तु को सचित्त वस्तु से ढँक देना।
कालाइक्कमे	भिक्षा का समय टाल कर भावना की हो।
परववएसे	आप सूझता होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो।
मच्छरियाए	मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो।

बडी संलेखना

अह भंते	इसके बाद हे भगवन्!
अपच्छिम मारणंतिय	सबके पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली
संलेहणा	संलेखना अर्थात् जिसमें शरीर, कषाय, ममत्व आदि कृश (दुर्बल) किये जाते हैं, ऐसे तप विशेष का।
झूसणा	सेवन करना।
आराहणा	आराधन करना।
पौषधशाला	सामायिक, दया, पौषध आदि करने का धर्म स्थान।
पडिलेह	प्रतिलेखन कर।
उच्चार पासवण भूमि	मल-मूत्र त्यागने की भूमि।

पडिलेह के	प्रतिलेखन अर्थात् देखकर के।
गमणागमणे	जाने आने की क्रिया का।
पडिक्कम के	प्रतिक्रमण कर।
दर्भादिक संथारा संथार	डाभ (तृण, घास) का संथारा।
संथार के	बिछाकर के।
दुरूह के	संथारे पर आरूढ़ होकर के।
करयल संपरिग्गहियं	दोनों हाथ जोड़कर।
सिरसावत्तं	मस्तक से आवर्त्तन (मस्तक पर जोड़े हुए हाथों को तीन बार दाहिनी ओर से बायीं तरफ घुमाना) करके।
मत्थए अंजलि कट्टु	मस्तक पर हाथ जोड़कर।
एवं वयासी	इस प्रकार बोले।
निःशल्य	माया, मिथ्यादर्शन और निदान (नियाणा) इन तीन शल्यों से रहित।
अकरणिज्जं	नहीं करने योग्य।
जं पि यं इमं सरीरं	और जो भी यह शरीर।
इट्ठं	इष्ट।
कंतं	कान्तियुक्त।
पियं	प्रिय, प्यारा।
मणुण्णं	मनोज्ञ, मनोहर।
मणामं	मन के अनुकूल।
धिज्जं	धैर्यशाली। धारण करने योग्य।
विसासियं	विश्वास करने योग्य।
सम्मयं	मानने योग्य - सम्मत।
अणुमयं	विशेष सम्मान को प्राप्त।
बहुमयं	बहुमत (बहुत माननीय) देह।
भण्ड करंडगसमाणं	आभूषण के करण्ड (करण्डिया-डिब्बा)के समान।
रयणकरण्डगभूयं	रत्नों के करण्डक के समान।
मा णं सीयं	शीत (सर्दी) न लगे।
मा णं उण्हं	उष्णता (गर्मी)न लगे।
मा णं खुहा	भूख न लगे।
मा णं पिवासा	प्यास न लगे।
मा णं वाला	सर्प न काटे।

मा णं चोरा	चोरों का भय न हो।
मा णं दंसमसगा	डाँस - मच्छर न सतावें।
वाइयं	वात।
पित्तियं	पित्त।
कप्फियं	कफरूप त्रिदोष।
संभीमं	भयंकर।
सण्णिवाइयं	सन्निपात रोग।
विविहा	अनेक प्रकार के।
रोगायंका	रोग (सम्बन्धी पीडाएँ) और आतंक न आवे।
परीसहा	क्षुधा आदि परिषह।
उवसग्गा	उपसर्ग-देव, तिर्यंच आदि द्वारा दिये गये कष्ट।
फासा फुसंतु	स्पर्श न करें ऐसा माना किन्तु अब।
एयं पिय णं	इस प्रकार के प्यारे देह को।
चरमेहिं	अन्तिम।
उस्सासणिस्सासेहिं	उच्छ्वास, निश्वास तक।
वोसिरामि	त्याग करता हूँ।
त्ति कट्टु	ऐसा करके।
कालं अणवकंखमाणे	काल की आकांक्षा (इच्छा) नहीं करता हुआ।
विहरामि	विहार करता हूँ ,विचरता हूँ।
इहलोगासंसप्पओगे	इस लोक में राजा चक्रवर्ती आदि के सुख व ऋद्धि की इच्छा करना।
परलोगासंसप्पओगे	परलोक में देवता, इन्द्र आदि के सुख की कामना करना।
जीवियासंसप्पओगे	महिमा प्रशंसा फैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की आकांक्षा करना।
मरणासंसप्पओगे	कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना।
कामभोगासंसप्पओगे	काम-भोग की अभिलाषा करना।

तस्स धम्मस्स

तस्स धम्मस्स	उस धर्म की जो।
केवलिपण्णत्तस्स	केवली भाषित है, उस ओर।
अब्भुट्ठिओमि	उद्यत हुआ हूँ।
आराहणाए	आराधना के लिए।
विरओमि	विरत (अलग) होता हूँ।

विराहणाए	विराधना से।
तिविहेणं	मन, वचन, काया द्वारा।
पडिक्कंतो	निवृत्त होता हुआ।
वंदामि	वन्दना करता हूँ।
जिण चउव्वीसं	24 तीर्थंकरों को।

आयरिय उवज्झाए

आयरिय	आचार्य महाराज।
उवज्झाए	उपाध्याय महाराज।
सीसे	शिष्य।
साहम्मिए	साधर्मिक।
कुल	एक आचार्य का शिष्य समुदाय।
गणे य	गण (अनेक आचार्यों का शिष्य समुदाय) पर।
जे	जो।
मे	मैंने।
केई	कुछ।
कसाया	क्रोध आदि कषाय किया हो तो।
सव्वे	सबको
तिविहेणं	तीन योग (मन,वचन,काया) से।
खामेमि	खमाता हूँ। क्षमा चाहता हूँ।
सव्वस्स	(इसी प्रकार) सभी।
समणसंघस्स	श्रमण-संघ-साधु समुदाय (चतुर्विधसंघ)
भगवओ	भगवान को।
अंजलिं	दोनों हाथ जोड़।
करिअ	करके।
सीसे	मस्तक पर लगाकर।
सव्वं	सबको।
खमावइत्ता	खमा करके।
खमामि	खमाता हूँ।
सव्वस्स	सबको।
अहयं पि	मैं भी।

सव्वस्स	सभी।
जीवरासिस्स	जीव राशि से।
भावओ	भाव से।
धम्मं निहिय नियचित्तो	धर्म में चित्त को स्थिर करके।
सव्वं	सबको।
खमावइत्ता	खमा करके।
खमामि	खमाता हूँ, क्षमा चाहता हूँ।

खामेमि सव्वे जीवा-क्षमापना पाठ

खामेमि	क्षमा चाहता हूँ।
सव्वे जीवा	सब जीवों को।
खमंतु मे	क्षमा करो मुझको।
मित्ति मे	मित्रता है मेरी।
सव्व भूएसु	सभी प्राणियों से।
वेरं	शत्रुता।
मज्झं न	मेरी नहीं।
केणइ	किसी के साथ।
एव महं	इस प्रकार मैं।
आलोइय	आलोचना करके।
निंदिय	आत्म-साक्षी से निन्दा करके।
गरिहिय	गुरू साक्षी से गर्हा करके।
दुगुंछियं	जुगुप्सा (ग्लानि-घृणा) करके।
सम्मं	सम्यक् प्रकार से।
तिविहेणं	मन,वचन,काया द्वारा।
पडिक्कंतो	पापों से निवृत्त होता हुआ।
वंदामि	वन्दन करता हूँ।
जिण चउव्वीसं	24 जिन-तीर्थंकर भगवान को।

पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं	गाँठ सहित यानी जब तक गाँठ बन्धी रखूँ, तब तक।

मुट्ठिसहियं	मुट्ठी सहित अर्थात् जब तक मैं मुट्ठी बन्द रखूँ, तब तक।
नमुक्कारसहियं	नमस्कार मंत्र बोल कर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त (48 मिनट) तक त्याग।
पोरिसियं	एक प्रहर का त्याग।
साड्ढ पोरिसियं	डेढ़ प्रहर का त्याग।
अण्णत्थऽणाभोगेणं	बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो।
सहसागारेणं	अकस्मात् जैसे पानी बरसता हो और मुख में छींटे पड़ जाये, या छाछ बिलोते समय मुँह में छीटे पड़ जाये।
महत्तरागारेणं	महापुरुषों की आज्ञा से अर्थात् गुरुजन के निमित्त से त्याग का भंग करना पड़े।
सव्वसमाहिवत्तियागारेणं	सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक नीरोगता रहे तब अर्थात् शरीर में भयंकर रोग हो जाये तो दवाई आदि का आगार (इन आगारों को रखकर)।
वोसिरामि	त्याग करता हूँ।

प्रतिक्रमण-प्रश्नोत्तरी

प्र.1 प्रतिक्रमण की क्या-क्या परिभाषाएँ प्रचलित हैं?

उ. (1) कृत पापों की आलोचना करना, निंदा करना।

(2) व्रत प्रत्याख्यान आदि में लगे दोषों से निवृत्त होना।

(3) अशुभ योग से निवृत्त होकर निशल्य भाव से शुभयोग में उत्तरोत्तर प्रवृत्त होना।

(4) मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग से आत्मा को हटाकर फिर से सम्यग् दर्शन, ज्ञान व चारित्र में लगाना प्रतिक्रमण है।

(5) पाप क्षेत्र से अथवा पूर्व में ग्रहण किये गये व्रतों की मर्यादा के अतिक्रमण से वापस आत्मशुद्धि क्षेत्र में लौट आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र. 2 प्रतिक्रमण कितने प्रकार का होता है?

उ. प्रतिक्रमण दो प्रकार का होता है (1) द्रव्य प्रतिक्रमण (2) भाव प्रतिक्रमण। **(1) द्रव्य प्रतिक्रमण-** उपयोग रहित, केवल परम्परा के आधार पर पुण्य फल की इच्छा रूप प्रतिक्रमण करना अर्थात् अपने दोषों की, मात्र पाठों को बोलकर शब्द रूप में आलोचना कर लेना, दोष-शुद्धि का कुछ भी विचार नहीं करना, 'द्रव्य प्रतिक्रमण' है। **(2) भाव प्रतिक्रमण-** उपयोग सहित, लोक-परलोक की चाह रहित, यश-कीर्ति-सम्मान आदि की अभिलाषा नहीं रखते हुए, मात्र अपनी आत्मा को कर्म-मल से विशुद्ध बनाने के लिये जिनाज्ञा अनुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण 'भाव प्रतिक्रमण' है।

प्र.3 प्रतिक्रमण आवश्यक क्यों है?

उ. सम्यक्त्व ग्रहण करते समय यदि पहले किए हुए पापों का पश्चात्ताप रूप प्रतिक्रमण नहीं किया जाता तो पूर्व के पापों का अनुमोदन चालू रहता है। अतः सम्यक्त्व में दृढ़ता नहीं आती। प्रमाद व अनाभोग (अज्ञान) आदि से अतिचार रूप काँटे प्रायः लग ही जाते हैं। यदि उनको दूर न किया जाय तो जीव विराधक बन जाता है। अतः विराधकता व समकित के विनाश से बचने के लिये प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्र. 4 प्रतिक्रमण का सार किस पाठ में आता है? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

उ. प्रतिक्रमण का सार इच्छामि ठामि के पाठ में आता है। क्योंकि पूरे प्रतिक्रमण में ज्ञान, दर्शन, चारित्राचारित्र तथा तप के अतिचारों की आलोचना की जाती है। इच्छामि ठामि के पाठ में भी इनकी संक्षिप्त आलोचना हो जाती है, इस कारण इसे प्रतिक्रमण का सार-पाठ कहा जाता है।

प्र. 5 प्रतिक्रमण करने से क्या-क्या लाभ हैं?

उ. (1) लगे दोषों की निवृत्ति होती है।

(2) प्रवचन माता की आराधना होती है।

(3) तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन होता है।

(4) व्रतादि ग्रहण करने की भावना जगती है।

(5) अपने दोषों की आलोचना करके व्यक्ति आराधक बन जाता है।

(6) सूत्र (आगम) की स्वाध्याय होती है।

(7) अशुभ कर्मों के बन्धन से बचते हैं।

प्र. **6** पाँच प्रतिक्रमण मुख्य रूप से कौन से पाठ से होते हैं?

उ. **मिथ्यात्व-** अरिहंतो महदेवो, दंसण समकित के पाठ से।

अव्रत- पाँच महाव्रत और पाँच अणुव्रत से।

प्रमाद- आठवाँ व्रत, अठारह पापस्थान से।

कषाय- अठारह पापस्थान, क्षमापना-पाठ, इच्छामि ठामि से।

अशुभ योग- इच्छामि ठामि, अठारह पापस्थान, नवमें व्रत से।

प्र. **7** मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय व अशुभ योग का प्रतिक्रमण किसने किया?

उ. मिथ्यात्व का श्रेणिक राजा ने, अव्रत का प्रदेशी राजा ने, प्रमाद का शैलक राजर्षि ने, कषाय का चण्डकौशिक ने और अशुभ योग का प्रतिक्रमण प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ने किया।

प्र. **8** व्रत व पच्चक्खाण में क्या अन्तर हैं?

उ.	**व्रत**	**पच्चक्खाण**
1.	ये विधिरूप प्रतिज्ञा व्रत है, जैसे- मैं सामायिक करता हूँ।	ये निषेधरूप प्रतिज्ञा है जैसे- सावद्य योगों का त्याग करता हूँ।
2.	व्रत मात्र चारित्र में ही होते हैं।	ये चारित्र-तप दोनों में होते हैं।
3.	व्रत करण योग के साथ ग्रहण किये जाते हैं।	ये करण योग के साथ भी तथा इनके बिना भी ग्रहण किये जाते है।
4.	इनमें पाठ के अन्त में तस्स भंते! पडिक्कमामि, निन्दामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि आता है।	इनमें अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि आता है।
	करना, कराना, अनुमोदन करना ये तीनों करण कहलाते हैं तथा मन, वचन, काया ये तीनों योग कहलाते हैं।	

प्र. **9** प्रतिक्रमण करने से क्या आत्मशुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है?

उ. प्रतिक्रमण में दैनिक चर्या आदि का अवलोकन किया जाता है। आत्मा में रहे हुए आश्रवद्वार (अतिचारादि) रूप छिद्रों को देखकर रोक दिया जाता है। जिस प्रकार पर लगे अतिचारादि मलिनता को पश्चात्ताप आदि के द्वारा साफ किया जाता है। व्यवहार में भी अपराध को सरलता से स्वीकार करने पर, पश्चात्ताप आदि करने पर अपराध हल्का हो जाता है। जैसे "माफ कीजिए (सॉरी)" आदि कहने पर माफ कर दिया जाता है। उसी प्रकार अतिचारों की निन्दा करने से, पश्चात्ताप करने से आत्म-शुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है। दैनिक जीवन में दोषों का सेवन पुनः नहीं करने की प्रतिज्ञा से

आत्म-शुद्धि होती है।

प्र.10 जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, उसके लिए क्या प्रतिक्रमण करना आवश्यक है?

उ. जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं, उसको भी प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए। क्योंकि आवश्यक सूत्र बत्तीसवाँ आगम बताया गया है। आगम का स्वाध्याय आत्मकल्याण तथा निर्जरा का कारण है। प्रतिक्रमण एक ऐसी औषधि के समान है जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग शान्त हो जाते हैं, रोग नहीं होने पर उस औषधि के प्रभाव से वर्ण, रूप, यौवन और लावण्य आदि में वृद्धि होती है और भविष्य में रोग नहीं होते। इसी तरह यदि दोष लगे हों तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती है और दोष नहीं लगे हों तो प्रतिक्रमण भाव और चारित्र की विशेष शुद्धि करता है। इसलिए प्रतिक्रमण सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है।

प्र.11 आवश्यक सूत्र का प्रसिद्ध दूसरा नाम क्या है?

उ. प्रतिक्रमण सूत्र।

प्र.12 आवश्यक सूत्र को प्रतिक्रमण सूत्र क्यों कहा जाता है?

उ. कारण कि आवश्यक सूत्र के छः आवश्यकों में से प्रतिक्रमण आवश्यक सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण है। इसलिये वह प्रतिक्रमण के नाम से प्रचलित हो गया है। दूसरा कारण वास्तव में प्रथम तीन आवश्यक प्रतिक्रमण की पूर्व क्रिया के रूप में और शेष दो आवश्यक उत्तर क्रिया के रूप में किये जाते हैं।

प्र.13 प्रतिक्रमण में प्रकाश व अंधकार का पाठ कौनसा है?

उ. दर्शन समकित का पाठ प्रकाश का व अठारह पापस्थान का पाठ अंधकार का है।

प्र.14 प्रतिक्रमण में जावज्जीवाए, जावनियमं तथा जाव अहोरत्तं शब्द कहाँ-कहाँ आते हैं?

उ. **जावज्जीवाए-** (जीवनपर्यन्त) पहले से आठवें व्रत में व संलेखना की पाटी में।

जावनियमं- (नियमपर्यन्त) नवमें व्रत में।

जाव अहोरत्तं- (एक दिन-रात) दसवें व ग्यारहवें व्रत में।

प्र.15 काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण कितने प्रकार का व कौन- कौनसा है ?

उ. काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का है- (1) देवसी (2) राइ (3) पक्खी (4) चौमासी (5) संवत्सरी।

प्र.16 प्रतिक्रमण के छः आवश्यकों को देव, गुरू व धर्म में विभाजित किस प्रकार कर सकते हैं?

उ. **दूसरा आवश्यक-** लोगस्स-देव का।

तीसरा आवश्यक- इच्छामि खमासमणो-गुरू का।

शेष चार आवश्यक- सामायिक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग व प्रत्याख्यान धर्म के हैं।

प्र.17 अकल्पनीय व अकरणीय में क्या अन्तर है?

उ. सावद्य भाषा बोलना आदि प्रवृत्तियाँ "अकल्पनीय" है तथा अयोग्य सावद्य आचरण करना "अकरणीय" है।

प्र.18 आगम किसे कहते हैं ?

उ. जो आप्त अर्थात् सर्वज्ञों की वाणी हो, उसे आगम कहते हैं। आगम आप्त पुरूषों द्वारा कथित, गणधरों द्वारा ग्रथित तथा मुनियों द्वारा आचरित होते हैं।

प्र.19 आगम कितने प्रकार के व कौन कौन से हैं

उ. आगम तीन प्रकार के हैं- (1) सुत्तागमे (2) अत्थागमे (3) तदुभयागमे।

प्र.20 सूत्रागम किसे कहते हैं?

उ. तीर्थंकर भगवन्तों ने अपने श्रीमुख से जो भाव फरमाये, उन्हें सुनकर गणधर भगवन्तों ने जिन आचारांग आदि आगमों की रचना की, उस सूत्र रूप आगम को 'सुत्तागम' कहते हैं।

प्र.21 अर्थागम किसे कहते हैं?

उ. तीर्थंकर परमात्मा ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये उस भाव रूप आगम को 'अर्थागम' कहते हैं। अथवा सूत्रों के जो हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद किये गये हैं, उन्हें भी अर्थागम कहते हैं।

प्र.22 तदुभयागम किसे कहते हैं?

उ. सूत्रागम और अर्थागम ये दोनों मिलकर तदुभयागम कहलाते हैं।

प्र.23 उच्चारण की अशुद्धि से क्या क्या हानियाँ हैं?

उ. (1) उच्चारण की अशुद्धि से कई बार अर्थ सर्वथा नष्ट हो जाता है। (2) कई बार विपरीत अर्थ हो जाता है। (3) कई बार आवश्यक अर्थ में कमी रह जाती है। (4) कई बार सत्य किन्तु अप्रासंगिक अर्थ हो जाता है, इस प्रकार अनेक हानियाँ हैं।

उदाहरण- संसार में से एक बिन्दु कम बोलने पर ससार (सार सहित) हो जाता है या शास्त्र में से एक मात्रा कम कर देने पर शस्त्र हो जाता है। अतः उच्चारण अत्यन्त शुद्ध करना चाहिये।

प्र.24 अकाल में स्वाध्याय और काल में अस्वाध्याय से क्या हानि है?

उ. जैसे जो राग या रागिनी जिस काल में गाना चाहिए, उससे भिन्न काल में गाने से अहित होता है, वैसे ही अकाल में स्वाध्याय करने से अहित होता है। यथाकाल स्वाध्याय न करने से ज्ञान में हानि होती है, शास्त्राज्ञा का उल्लंघन होता है तथा अव्यवस्थितता का दोष उत्पन्न होता है।

प्र.25 ज्ञान व ज्ञानी की सेवा क्यों करनी चाहिये?

उ. ज्ञान व ज्ञानी की सेवा पाँच कारणों से करनी चाहिये- (1) हमें नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती है। (2) हमारे संदेह का निवारण होता है। (3) सत्यासत्य का निर्णय होता है। (4) अतिचारों की शुद्धि होती है। (5) नवीन प्रेरणा से हमारे सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप शुद्ध व दृढ़ बनते हैं।

प्र.26 सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उ. सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर श्रद्धा रखना सम्यक्त्व कहलाता है। जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररुपित तत्त्वों में यथार्थ विश्वास करना सम्यक्त्व है। मिथ्यात्व मोहनीय आदि सात प्रकृतियों के क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम से उत्पन्न आत्मा के शुद्ध परिणामों को 'सम्यक्त्व' कहते हैं।

प्र.27 सुदेव कौन हैं?

उ. जो राग-द्वेष से रहित हैं, अठारह दोष रहित और बारह गुण सहित हैं। सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। जिनकी

वाणी में जीवों का एकान्त हित है। जिनकी कथनी व करनी में अंतर नहीं है। जो देवों के भी देव हैं। ऐसे तीन लोक के वंदनीय, पूजनीय, परम आराध्य, परमेश्वर प्रभु अरिहंत और सिद्ध हमारे सुदेव हैं।

प्र.28 सुगुरु कौन हैं?

उ. जो तीन करण तीन योग से अहिंसादि पंच महाव्रत का पालन करते हैं। कंचन-कामिनी के त्यागी हैं। पाँच समिति, तीन गुप्ति का निर्दोष पालन करते हैं। भिक्षाचर्या द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए स्वयं संसार सागर से तिरते हैं, अन्य जीवों को भी तिरने हेतु जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म का उपदेश देते हैं, वे साधु ही सुगुरू हैं।

प्र.29 सच्चा धर्म कौनसा है?

उ. आत्मा को दुर्गति से बचाकर मोक्ष की ओर ले जाने वाले विशुद्ध मार्ग को सुधर्म कहते हैं। जिनेश्वर भगवान द्वारा प्ररुपित अहिंसा, संयम और तप का समन्वित रूप सच्चा धर्म है। तथा जीवात्मा द्वारा सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि निजगुणों का आराधन करना भी सच्चा धर्म है।

प्र.30 मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ. मोह के उदय से तत्त्वों की सही श्रद्धा नहीं होना या विपरीत श्रद्धा होना मिथ्यात्व है। अथवा देव-गुरू-धर्म एवं आत्म-स्वरूप संबंधी विपरीत श्रद्धान होना 'मिथ्यात्व' कहलाता है।

प्र.31 जिन वचन में शंका क्यों होती है, उसे कैसे दूर करनी चाहिये?

उ. श्री जिन वचन में कई स्थानों पर सूक्ष्म तत्त्वों का विवेचन हुआ है। कई स्थानों पर नय और निक्षेप के आधार पर वर्णन हुआ है। वह हमारी स्थूल बुद्धि से समझ में नहीं आता, इस कारण शंकाएँ हो जाती हैं। अतः हमें अरिहंत भगवान के केवल ज्ञान व वीतरागता का विचार करके तथा अपनी बुद्धि की मंदता का विचार करके तथा गुरुजनों से समाधान प्राप्त करके ऐसी शंकाओं को दूर करनी चाहिये।

प्र.32 पाप किसे कहते हैं?

उ. जो आत्मा को मलिन करे, उसे पाप कहते हैं। जो अशुभ योग से सुख पूर्वक बांधा जाता है और दुःखपूर्वक भोगा जाता है, वह पाप है। पाप अशुभ प्रकृतिरूप है, पाप का फल कड़वा, कठोर और अप्रिय होता है। पाप के मुख्य अठारह भेद हैं।

प्र.33 पापों अथवा दुर्व्यसनों का सेवन करने से क्या-क्या हानियाँ होती हैं?

उ. (1) पापों अथवा दुर्व्यसनों के सेवन करने से शरीर नष्ट हो जाता है, प्राणी को तरह-तरह के रोग घेर लेते हैं। (2) स्वभाव बिगड़ जाता है। (3) घर में स्त्री-बच्चे-बच्चियों आदि की दुर्दशा हो जाती है। (4) व्यापार चौपट हो जाता है। (5) धन का सफाया हो जाता है। (6) मकान-दुकान नीलाम हो जाते हैं (7) प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। (8) राज्य से दण्डित होते हैं (9) कारागृह में जीवन बिताना पड़ता है। (10) फाँसी पर भी लटकना पड़ सकता है। (11) आत्मघात करना पड़ता है। इस तरह अनेक प्रकार की हानियाँ इस भव में होती हैं। परभव में भी वह नरक, निगोद आदि में उत्पन्न होता है। वहाँ उसे बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। कदाचित् मनुष्य बन भी जाय तो हीन जाति-कुल में जन्म लेता है। अशक्त, रोगी, हीनांग, और कुरूप बनता है। वह मूर्ख, निर्धन, शासित और दुर्भागी रहता है। अतः पापों अथवा दुर्व्यसनों का त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

प्र.34 मिथ्या-दर्शन शल्य क्या है?

उ. जिनेश्वर भगवन्तों द्वारा प्ररुपित सत्य पर श्रद्धा न रखना एवं असत्य का कदाग्रह रखना मिथ्यादर्शन शल्य है। यह शल्य सम्यग्दर्शन का घातक है।

प्र.35 निदान शल्य किसे कहते हैं?

उ. धर्माचरण के द्वारा सांसारिक फल की कामना करना, भोगों की लालसा रखना अर्थात् धर्मकरणी का फल भोगों के रूप में प्राप्त करने हेतु अपने जप-तप-संयम को दाव पर लगा देना 'निदान शल्य' कहलाता है।

प्र.36 संज्ञा किसे कहते हैं?

उ. चारित्र मोहनीय कर्मोदय की प्रबलता से होने वाली अभिलाषा, इच्छा 'संज्ञा' कहलाती है। आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा व परिग्रह संज्ञा के रूप में ये चार प्रकार की होती हैं।

प्र.37 विकथा किसे कहते हैं?

उ. संयम-जीवन को दूषित करने वाली कथा को 'विकथा' कहते हैं। स्त्री कथा, भत्त कथा, देशकथा और राज कथा के भेद से विकथा चार प्रकार की होती हैं।

प्र.38 चारित्र किसे कहते हैं?

उ. चारित्र का अर्थ है- व्रत का पालन करना। आत्मा में रमण करना। जिसके द्वारा आत्मा के साथ होने वाले कर्म का आश्रव एवं बंध रुके एवं पूर्व कर्म निर्जरित हो, वह चारित्र है अथवा अठारह पापों का यावज्जीवन तीन करण - तीन योग से प्रत्याख्यान करना भी 'चारित्र' कहलाता है।

प्र.39 जीव का जन्म-मरण किस अपेक्षा से माना गया है?

उ. प्राणों के संयोग से होने वाले नये भव की अपेक्षा से जन्म माना जाता है और प्राणों के वियोग से होने वाले पुराने भव की समाप्ति की अपेक्षा से मरण माना जाता है।

प्र.40 जीव अपने कर्मानुसार मरते और दुःख पाते हैं फिर मारने वाले को पाप क्यों लगता है?

उ. मारने वाले को मारने की दुष्ट भावना और मारने की दुष्ट प्रवृत्ति से पाप लगता है।

प्र.41 श्रावक त्रस जीवों की हिंसा का त्याग क्यों करता है? त्रस की हिंसा से पाप अधिक क्यों होता है?

उ. त्रस की हिंसा से पाप अधिक होता है, क्योंकि त्रस जीवों में जीवत्व प्रत्यक्ष है तथा वे मारने पर बचने का प्रयास करते हैं। ऐसी दशा में जीवत्व प्रत्यक्ष होते हुए जबरदस्ती मारने से क्रूरता अधिक आती है। क्रूरता के भावों से अधिक पाप का बन्ध होता हैं। स्थावर जीवों को जितने पुण्य से स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण आदि मिलते हैं, उससे भी कहीं अधिक पुण्य कमाने पर एक त्रस जीव को एक जिह्वा-वचन आदि प्राण मिलते हैं। उस अनन्त पुण्य से प्राप्त प्राणों के वियोग में भी क्रूरता के भाव अधिक रहते हैं, इसलिये त्रस जीवों की हिंसा से पाप अधिक होता है।

प्र.42 अहिंसा अणुव्रत का पालन कितने करण व योग से होता है?

उ. यद्यपि अहिंसा अणुव्रत का नियम श्रावक दो करण व तीन योग से लेता है पर इसका तीन करण, तीन योग से पालन का विवेक रखना चाहिये अर्थात् कोई निरपराध त्रस जीव को संकल्पपूर्वक मारे तो उसका मन - वचन - काया से अनुमोदन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य व्रतों को भी तीन करण तीन योग से पालने का लक्ष्य रखना चाहिये।

प्र.43 अतिभार किसे कहते हैं?

उ. जो पशु जितने समय तक जितना भार ढो सकता है उससे भी अधिक समय तक उस पर भार लादना। या जो मनुष्य जितने समय तक जितना कार्य कर सकता है उससे भी अधिक समय तक उससे कार्य कराना अतिभार है।

प्र.44 आकुट्टी से मारना किसे कहते हैं?

उ. कषायवश निर्दयतापूर्वक प्राणों से रहित करने, मारने की बुद्धि से मारना, आकुट्टी की बुद्धि से मारना कहलाता है।

प्र.45 अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किसे कहते हैं ?

उ. **अतिक्रम** - व्रत की प्रतिज्ञा के विरूद्ध व्रत के उल्लंघन करने के विचार को अतिक्रम कहते हैं।

व्यतिक्रम - व्रत का उल्लंघन करने के लिये तत्पर होने को व्यतिक्रम कहते हैं।

अतिचार - व्रत को भंग करने की सामग्री इकट्ठी करना, व्रत भंग के निकट पहुँच जाना अतिचार है।

अनाचार - व्रत का सर्वथा भंग करना अनाचार है।

प्र.46 मृषावाद कितने प्रकार का है?

उ. मृषावाद दो प्रकार का है- (1) सूक्ष्म और (2) स्थूल। (1) हँसी-मजाक या आमोद-प्रमोद में मामूली सा झूठ बोलने का अनुमोदन करना सूक्ष्म झूठ है। (2) कन्या संबंधी, पशु संबंधी, भूमि संबंधी, धरोहर-गिरवी संबंधी झूठी साक्षी देना आदि स्थूल मृषावाद है।

प्र.47 रक्षा के लिये झूठी साक्षी देना या नहीं?

उ. रक्षा की भावना उत्तम है पर रक्षा के लिये भी सापराधी की झूठी साक्षी नहीं देना चाहिये। कदाचित् इससे कभी अन्य निरपराधी की मृत्यु भी हो सकती है। निरपराधी को बचाने के लिये भी झूठी साक्षी देना उचित नहीं है। भविष्य में इससे साक्षी देने वाले का विश्वास उठ जाता है। अतः झूठी साक्षी नहीं देनी चाहिये।

प्र.48 सहसब्भक्खाणे के अन्य प्रकार बताइये।

उ. जैसे क्रोधादि कषाय के आवेश में आकर बिना विचारे किसी पर हत्या, झूठ, चोरी, जारी आदि आरोप लगाना। संदेह होने पर कुछ भी प्रमाण मिले बिना, सुनी सुनाई बात पर या शत्रुता निकालने के लिए या अपने पर आये आरोप को टालने के लिये आरोप लगाना आदि भी सहसब्भक्खाणे के प्रकार हैं।

प्र.49 सच्ची बात प्रकट करना अतिचार कैसे?

उ. स्त्री आदि की सत्य परन्तु गोपनीय बात प्रकट करने से उसके साथ विश्वासघात होता है, वह लज्जित होकर मर सकती है या राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र का आक्रमण आदि हो सकता है। अतः विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है।

प्र.50 अदत्तादान किसे कहते हैं?

उ. स्वामी की आज्ञा आदि न होते हुए भी उसकी वस्तु लेना अदत्तादान है।

प्र.51 कूट तौल-माप किसे कहते हैं?

उ. देने के हल्के और लेने के भारी, पृथक् तौल-माप रखना या देते समय कम तौलकर देना, कम माप कर देना, इसी प्रकार कम गिनकर देना या खोटी कसौटी लगाकर कम देना। लेते समय अधिक तौलकर, अधिक मापकर, अधिक गिनकर तथा स्वर्णादि को कम बताकर लेना आदि।

प्र.52 ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं?

उ. **ब्रह्मचर्य-** ब्रह्म अर्थात् आत्मा और चर्य का अर्थ है - रमण करना। यानी आत्मा के अपने स्वरूप में रमण करना ब्रह्मचर्य है। इन्द्रियों और मन को विषयों में प्रवृत्त नहीं होने देना, कुशील से बचना, सदाचार का सेवन करना, आत्म-साधना में लगे रहना व आत्म-चिंतन करना 'ब्रह्मचर्य' है।

प्र.53 ब्रह्मचर्य पालन के लिए किस प्रकार का चिन्तन करना चाहिए?

उ. ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है। ब्रह्मचारी को देवता भी नमस्कार करते हैं। काम-भोग किंपाक फल और आसीविष के समान घातक हैं। ब्रह्मचर्य के अपालक रावण, जिनरक्षित, सूर्यकान्ता आदि की कैसी दुर्गति हुई? ब्रह्मचर्य के पालक जम्बू, मल्लिनाथ, राजीमती आदि का जीवन कैसा उज्ज्वल व आराधनीय बना, आदि चिन्तन करना चाहिए।

प्र.54 परिग्रह किसे कहते हैं?

उ. किसी भी व्यक्ति एवं वस्तु पर मूर्च्छा, ममत्व होना परिग्रह है। खेत, घर, धन, धान्य, आभूषण, वस्त्र, वाहन, दास, दासी, कुटुम्ब, परिवार आदि का संग्रह रखना बाह्य परिग्रह है व क्रोध-मान माया - लोभ - ममत्व आदि आभ्यन्तर परिग्रह है।

प्र.55 परिग्रह-परिमाण व्रत का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उ. तृष्णा, इच्छा, मूर्च्छा कम कर संतोष रखना तथा पापजनक आरम्भ-समारम्भ में कमी लाना ही परिग्रह परिमाण व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

प्र.56 साडीकम्मे (शकट कर्म) किसे कहते हैं?

उ. यंत्रों के काम को शकट कर्म कहते हैं, जैसे गाड़ी आदि वाहन के, हलादि खेती के, चर्खे आदि उत्पादन के यंत्रों को बनाना, खरीदना व बेचने को साडीकम्मे कहते हैं।

प्र.57 अनर्थ दंड किसे कहते हैं?

उ. आत्मा को मलिन करके व्यर्थ कर्म-बंधन कराने वाली प्रवृत्तियाँ अनर्थ दंड हैं। इनसे निष्प्रयोजन पाप होता है। अतः वे सारी क्रियाएँ जिनसे अपना या अपने कुटुम्ब का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता हो, अनर्थ दंड हैं।

प्र.58 प्रमादाचरण किसे कहते हैं?

उ. घर, व्यापार, सेवा आदि के कार्य करते समय बिना प्रयोजन हिंसादि पाप न हो, सप्रयोजन भी कम से कम हो, इसका ध्यान न रखना। हिंसादि के साधन या निमित्तों को जहाँ-तहाँ, ज्यों-त्यों रख देना। घर, व्यापार, सेवा आदि से बचे हुए अधिकांश समय को इन्द्रियों के विषयों में (सिनेमा, ताश, शतरंज आदि में) व्यय करना, 'प्रमादाचरण' है। आत्म-गुणों में बाधक बनने वाली अन्य सभी प्रवृत्तियाँ भी प्रमादाचरण कहलाती हैं।

प्र.59 प्रमाद किसे कहते हैं व उसके कितने भेद होते हैं?

उ. संवर-निर्जरा युक्त शुभ कार्य में यत्न-उद्यम न करने को प्रमाद कहते हैं। अथवा आत्म-स्वरूप का विस्मरण होना प्रमाद है। प्रमाद के पाँच भेद हैं- (1) मद्य (2) विषय (3) कषाय (4) निद्रा (5) विकथा। ये पाँचों प्रमाद जीव को संसार में पुनः पुनः गिराते हैं।

प्र.60 रात्रि भोजन-त्याग को बारह व्रतों में से किस व्रत में सम्मिलित किया जाना चाहिये?

उत्तर- रात्रि भोजन-त्याग को दसवें देसावगासिक व्रत के अन्तर्गत लेना युक्तिसंगत लगता है। दसवाँ व्रत प्रायः छठे व सातवें व्रत का संक्षिप्त रूप- एक दिन-रात के लिये है। अतः जीवन पर्यन्त के रात्रि-भोजन त्याग को सातवें व्रत में तथा एक रात्रि के लिये रात्रि-भोजन त्याग को दसवें व्रत में माना जाना चाहिये।

प्र.61 रात्रि भोजन-त्याग श्रावक-व्रतों के पालन में किस प्रकार सहयोगी बनता हैं?

उत्तर- रात्रि भोजन-त्याग श्रावक-व्रतों के पालन में निम्न प्रकार सहयोगी बनता है-

1. रात्रि भोजन करने वाले गर्म भोजन की इच्छा से प्रायः रात्रि में भोजन सम्बन्धी आरम्भ-समारम्भ करते हैं। रात्रि में भोजन बनाते समय त्रस जीवों की भी विशेष हिंसा होती हैं, रात्रि भोजन-त्याग से वह हिंसा रुक जाती है।
2. माता-पिता आदि से छिपकर होटल आदि में खाने की आदत एवं उससे सम्बन्धी झूठ से बचाव होता है।
3. ब्रह्मचर्य पालन में सहजता आती है।
4. बहुत देर रात्रि तक व्यापार आदि न करके जल्दी घर आने से परिग्रह-आसक्ति में कमी आती हैं।
5. भोजन में काम आने वाले द्रव्यों की मर्यादा सीमित हो जाती है।
6. दिन में भोजन बनाने की अनुकूलता होने पर भी लोग रात्रि में भोजन बनाते हैं, किन्तु रात्रि भोजन-त्याग से रात्रि में होने वाली हिंसा का अनर्थदण्ड रुक जाता है।
7. सायंकालीन सामायिक-प्रतिक्रमण आदि का भी अवसर प्राप्त हो सकता है। घर में महिलाओं को भी सामायिक- स्वाध्याय आदि का अवसर मिल सकता है।
8. उपवास आदि करने में भी अधिक बाधा नहीं आती, भूख-सहन करने की आदत बनती है, जिससे अवसर आने पर उपवास-पौषध आदि भी किया जा सकता है।
9. सायंकाल के समय सहज ही सन्त-सतियों के आतिथ्य-सत्कार (गौचरी बहराना) का भी लाभ मिल सकता है।

प्र.62 रात्रि भोजन करने से क्या-क्या हानियाँ हैं?

उत्तर- रात्रि भोजन करने से मुख्य हानि तो भगवान की आज्ञा का उलंघन है। इसके साथ ही बुद्धि का विनाश, जलोदर का रोग होना, वमन, कोढ़, स्वर भंग, निद्रा न आना, आयु घटना, पेट की बीमारियाँ आदि अनेक शारीरिक हानियाँ होती हैं।

प्र.63 रात्रि भोजन-त्याग से क्या-क्या लाभ हैं?

उत्तर- रात्रि भोजन-त्याग से निम्न प्रमुख लाभ होते हैं-

1. जीवों को अभयदान मिलता है।

2. मांसाहार का दोष नहीं लगता है।
3. अहिंसा व्रत का पालन होता है।
4. पाचन तन्त्र को विश्राम मिलता है।
5. मनुष्य बुद्धिमान और निरोग बनता है।
6. दुर्व्यसनों से बच जाता है।
7. मन और इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।
8. सुपात्र दान का लाभ मिलता है।
9. प्रतिक्रमण, स्वाध्याय आदि का लाभ मिलता है।
10. आहारादि का त्याग होने से कर्मों की निर्जरा होती है।

प्र.64 कौनसा मद किसने किया?

उ.
जाति मद - हरिकेशी ने पूर्वभव में
कुलमद - मरीचि ने
बलमद - श्रेणिक महाराज ने
रूपमद - सनत् कुमार चक्रवर्ती ने
तपमद - कुरगडु ने पूर्वभव में
लाभमद - संभूम चक्रवर्ती ने
श्रुतमद - स्थूलिभद्र ने
ऐश्वर्यमद - दशार्णभद्र राजा ने

प्र.65 पौषध में किनका त्याग करना आवश्यक है?

उ. पौषध में चारों प्रकार के आहार का, अब्रह्म सेवन का, स्वर्णाभूषणों का, शरीर की शोभा-विभूषा का, शस्त्र-मूसलादि का एवं अन्य सभी सावद्य कार्यों का त्याग करना आवश्यक है।

प्र.66 पौषध कितने प्रकार के हैं?

उ. पौषध दो प्रकार के हैं- (1) प्रतिपूर्ण और (2) देश पौषध। जो पौषध कम से कम आठ प्रहर के लिये किया जाता है, वह प्रतिपूर्ण पौषध कहलाता है तथा जो पौषध कम से कम चार प्रहर का होता है वह देश पौषध कहलाता है। देश पौषध भी यदि चौविहार उपवास के साथ किया है तो ग्यारहवाँ पौषध और यदि तिविहार उपवास के साथ किया है तो दसवाँ पौषध कहलाता है। ग्यारहवाँ पौषध कम से कम पाँच प्रहर का तथा दसवाँ पौषध कम से कम चार प्रहर का होता है।

प्र.67 सामायिक व पौषध में क्या अन्तर हैं?

उ. श्रावक-श्राविकाओं की सामायिक केवल एक मुहूर्त यानी 48 मिनट की होती है, जबकि पौषध कम से कम चार प्रहर का (लगभग 12 घंटे का) होता हैं। सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जबकि पौषध चार और उससे अधिक प्रहर का होने से रात्रि के समय में निद्रा ली जा सकती है। प्रतिपूर्ण पौषध में तो दिन में भी चारों आहारों का त्याग रहता है, किन्तु देश पौषध में- दया व्रतादि में दिन में अचित्त आहारादि ग्रहण किया जा सकता है। रात्रि में तो चौविहार त्याग होता ही है।

प्र.68 पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौषध की भावना जगे तो सामायिक पालकर पौषध ले या सीधे ही?

उ. पौषध सीधे ही लेना चाहिये, क्योंकि पालकर लेने से बीच में अव्रत लगता है। कदाचित् पालते-पालते

उसकी भावना मंद भी हो सकती है।

प्र.**69** पौषध लेने के पश्चात् सामायिक का काल आ जाने पर सामायिक पालें या नहीं?

उ. सामायिक विधिवत् न पालें, क्योंकि पौषध चल रहा है। सामायिक पूर्ति की स्मृति के लिये नमस्कार मंत्र आदि गिन लें।

प्र.**70** पौषध लेने के बाद में सामायिक करें या नहीं?

उ. पौषध में सावद्य योगों का त्याग होने से स्वयं सामायिक ही है, परन्तु निद्रा, आलम्बन आदि इतने समय तक नहीं लूँगा, आदि के नियम कर सकते हैं।

प्र.**71** बारह व्रतों में बिना किसी करण कोटि का कौनसा व्रत है?

उ. बारहवाँ अतिथि संविभाग व्रत।

प्र.**72** बारहवें व्रत को धारण करने वालों को मुख्य रूप से किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

उ. 1. भोजन बनाने वाले और करने वालों को सचित्त वस्तुओं का संघट्टा न हो, इस प्रकार बैठना चाहिये। 2. घर में सचित्त-अचित्त वस्तुओं को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिये। 3. सचित्त वस्तुओं का काम पूर्ण होने पर उनको यथा स्थान रखने की आदत होनी चाहिये। 4. कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति का कचरा व गुठलियाँ आदि को घर में बिखेरने की प्रवृत्ति नहीं रखनी चाहिये। 5. धोवन पानी के बारे में अच्छी जानकारी करके अपने घर में सहज बने अचित्त कल्पनीय पानी को तत्काल फैंकने की आदत नहीं रखनी चाहिये। उसे योग्य स्थान में रखना चाहिये। 6. दिन में घर का दरवाजा खुला रखने की प्रवृत्ति रखनी चाहिये। 7.साधु मुनिराज घर में पधारें तो सूझता होने पर तथा मुनिराज के अवसर होने पर स्वयं के हाथ से दान देने की उत्कृष्ट भावना रखनी चाहिये। 8. साधुजी की गोचरी के विधि-विधान की जानकारी, उनकी संगति, चर्चा एवं शास्त्र-स्वाध्याय से निरंतर बढ़ाते रहना चाहिये। 9. साधु मुनिराज गवेषणा करने के लिए कुछ भी पूछताछ करे तो झूठ नहीं बोलना चाहिये।

प्र.**73** संत सतियों को कितने प्रकार की वस्तुएँ दान दे सकते हैं?

उ. मुख्यतः चौदह प्रकार की वस्तुएँ दान दे सकते हैं। उनका वर्णन आवश्यक सूत्र के 12 वें अतिथि संविभाग व्रत में इस प्रकार हैं- अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, चौकी, पाटा, पौषधशाला (घर), संस्तारक, औषध और भेषज। इनमें अशन से रजोहरण तक की वस्तुएँ अप्रतिहारी तथा चौकी से भेषज तक की वस्तुएँ प्रतिहारी कहलाती हैं। जो लेने के बाद वापस न लौटा सके, वे अप्रतिहारी तथा जो वापस लौटा सके, वे वस्तुएँ प्रतिहारी कहलाती हैं।

प्र.**74** अतिथि संविभाग व्रत का क्या स्वरूप है?

उ. जिनके आने की कोई तिथि या समय नियत नही हैं, ऐसे पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ श्रमणों को उनके कल्प के अनुसार चौदह प्रकार की वस्तुएँ निस्वार्थ भाव पूर्वक आत्म-कल्याण की भावना से देना तथा दान का संयोग न मिलने पर भी सदा दान देने की भावना रखना, अतिथि संविभाग व्रत है।

प्र.**75** बारह व्रतों में कितने विरमण व्रत व कितने अन्य व्रत हैं? कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- बारह व्रतों में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ व आठवाँ व्रत विरमण व्रत कहलाते हैं, क्योंकि इनमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व अनर्थदण्ड का क्रमशः त्याग किया जाता है। विरति की प्रधानता होने से इनमें विरमण शब्द बोला जाता है।

छठा व सातवाँ व्रत परिमाण व्रत कहलाते हैं, क्योंकि इन दोनों में दिशाओं एवं खाने-पीने की मर्यादा की जाती है। सामान्यतः श्रावक पूर्ण त्याग नहीं कर पाता, वह मर्यादा ही करता है, इसलिये इन्हें परिमाण व्रत कहा है।

नवमाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ व बारहवाँ व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं, क्योंकि इनमें अणुव्रतों-गुणव्रतों के पालन का अभ्यास किया जाता है।

प्र.**76** बारहवें व्रत में करण-योग क्यों नहीं है?

उत्तर- बारहवें व्रत में साधु-साध्वी को चौदह प्रकार की निर्दोष वस्तुएँ देने तथा भावना भाने का उल्लेख है। पापों के त्याग का वर्णन नहीं होने से इसमें करण-योग की आवश्यकता नहीं है।

प्र.**77** बारह व्रतों में मूल व्रत कितने और उत्तर व्रत कितने हैं?

उ. पाँच अणुव्रत मूल व्रत हैं, क्योंकि वे बिना संमिश्रण के बने हुए हैं। शेष व्रत उत्तरव्रत हैं, क्योंकि वे मूल व्रतों के सम्मिश्रण से या उन्हीं के विकास से बने हैं।

प्र.**78** 'संलेखना' किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवन का अन्तिम समय आया जान कर कषायों एवं शरीर को कृश करने के लिये जो तप-विशेष किया जाता है, उसे संलेखना कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'संथारा' भी है। यह तप अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं परिस्थिति के अनुसार तिविहार अथवा चौविहार (त्याग) दोनों प्रकार से किया जा सकता है।

प्र.**79** मारणांतिक संथारे की विधि क्या है ?

उ. संथारे का योग्य अवसर देखकर साधु-साध्वीजी की सेवा में या उनके अभाव में अनुभवी श्रावक-श्राविका के सम्मुख अपने व्रतों में लगे अतिचारों की निष्कपट आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिये। पश्चात् कुछ समय के लिए या यावज्जीवन के लिए आगार सहित अनशन लेना चाहिये। इसमें आहार और अठारह पाप का तीन करण - तीन योग से त्याग किया जाता है। यदि किसी का संयोग नहीं मिले तो स्वयं भी आलोचना कर संलेखना तप ग्रहण कर सकते हैं। यदि तिविहार अनशन ग्रहण करना हो तो 'पाणं' शब्द नहीं बोलना चाहिये। गादी, पलंग का सेवन, गृहस्थों द्वारा सेवा आदि कोई छूट रखनी हो तो उसके लिए आगार रख लेना चाहिये। संथारे के लिये शरीर व कषायों को कृश करने का अभ्यास संलेखना द्वारा करना चाहिये।

प्र.**80** उपसर्ग के समय संथारा कैसे करना चाहिये?

उ. जहाँ उपसर्ग उपस्थित हो, वहाँ की भूमि पूँज कर बड़ी संलेखना में आये हुए "नमोत्थुणं से विहरामि" तक पाठ बोलना चाहिये और आगे इस प्रकार बोलना चाहिये "यदि उपसर्ग से बचूँ तो अनशन पालना कल्पता है, अन्यथा जीवन पर्यन्त अनशन है।"

प्र.**81** तप के अतिचार कौन-कौनसे हैं?

उ. जो संलेखना के अतिचार हैं प्रायः वे ही तप के अतिचार हैं। जैसे- (1) इस लोक के सुख की इच्छा करना। (2) परलोक के सुख की इच्छा करना (3) प्रशंसा मिलने पर अधिक तप करना एवं अधिक जीने की कामना करना। (4) असाता को देखकर (जो तप मैंने किया, वह शीघ्र पूरा हो) मरने की चिंता करना। (5) आहारादि की एवं देव प्रदत्त काम-भोगों की इच्छा करना।

प्र.**82** तप से मिलने वाले फल कौन-कौन से हैं?

उ. इहलोक दृष्टि से बाह्य तप से शरीर के रोग तथा विकार नष्ट होते हैं, शरीर दृढ़ व पुष्ट बनता है।

आभ्यन्तर तप से लोगों में प्रीति, आदर, विनय आदि होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा के कर्म रोग तथा कर्म विकार नष्ट होने से आत्मा सशक्त बनती है। लब्धियाँ प्राप्त होती हैं, देव सेवा करते हैं, इत्यादि तप के अनेक फल हैं।

प्र.83 श्रावक के अतिचार कितने व कौन कौन से हैं?

उ. श्रावक के 99 अतिचार हैं। ज्ञान के 14, दर्शन के 5, चारित्राचारित्र के (60+15) 75 व तप (संलेखना) के 5 हैं।

प्र.84 खमासमणो और भाव वन्दना का आसन किसका प्रतीक है?

उ. खमासमणो का आसन कोमलता व नम्रता का प्रतीक है तथा वन्दना का आसन शरणागति व विनय का प्रतीक है।

प्र.85 इच्छामि खमासमणो दो बार क्यों बोला जाता है?

उ. जिस प्रकार दूत राजा को नमस्कार कर कार्य निवेदन करता है और राजा से विदा होते समय फिर नमस्कार करता है, उसी प्रकार शिष्य कार्य को निवेदन करने के लिये अथवा अपराध की क्षमायाचना करने के लिए गुरु को प्रथम वंदना करता है, खमासमणो देता है और जब गुरु महाराज क्षमा प्रदान कर देते हैं, तब शिष्य वन्दना करके दूसरा खमासमणो देकर वापस चला जाता हैं। बारह आवर्तन पूर्वक वंदन की पूरी विधि दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने से ही संभव है। अतः पूर्वाचार्यों ने दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने की विधि बतलायी है।

प्र.86 'इच्छामि खमासमणो' के पाठ में आए "आवस्सियाए पडिक्कमामि" दूसरे खमासमणो में क्यों नहीं बोलते हैं?

उत्तर- पहली बार खमासमणो के पाठ द्वारा खमासमणो देने के लिये गुरुदेव के अवग्रह (चारों ओर की साढ़े तीन हाथ भूमि) में से बाहर निकलने हेतु 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' बोला जाता है। दूसरी बार आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं होने से 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' शब्द नहीं बोला जाता।

प्र.87 इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलते समय कब खड़ा होना चाहिए?

उ. पहली बार जब इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें तब 'वइक्कमं' शब्द बोल कर खड़ा होना चाहिए तथा 'आवस्सियाए' व उससे आगे का पाठ खड़े होकर ही बोलना चाहिए। दुबारा जब इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें तो 'आवस्सियाए' शब्द पर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। उकडू आसन से बैठे-बैठे ही पाठ बोलना चाहिए।

प्र.88 वन्दना किसे कहते हैं?

उ. क्षमा आदि गुणों के धारक साधुओं को आवर्तन देना, पंचांग नमाकर वन्दना करना, उनके चरण स्पर्श करना, उनकी चारित्र सम्बन्धी समाधि तथा शरीर, इन्द्रिय, मन सम्बन्धी सुख साता पूछना, उन के प्रति जाने-अनजाने में हुई आशातना का पश्चात्ताप करना आदि 'वन्दना' है।

प्र.89 प्रथम पद की वन्दना में जघन्य बीस तथा उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर तीर्थंकरजी की गणना किस प्रकार की गई है?

उ. महाविदेह क्षेत्र पाँच हैं - 1 जम्बूद्वीप में, 2 धातकी खण्ड में और 2 अर्ध पुष्कर द्वीप में।

प्रत्येक महाविदेह क्षेत्र के मध्य में मेरूपर्वत है। इसके मध्य में आने से पूर्व व पश्चिम की अपेक्षा

दो-दो भेद हो जाते हैं। पूर्व महाविदेह के मध्य में सीता नदी और पश्चिम महाविदेह के मध्य में सीतोदा नदी आ जाने से एक-एक के पुनः दो-दो विभाग हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक के चार विभाग हो गये। इन चारों विभागों में आठ-आठ विजय हैं। अतः एक महाविदेह में 8 x 4 = 32 विजय तथा 5 महाविदेह में 32 x 5 = 160 विजय हैं।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में जघन्य (कम से कम) 4 तीर्थंकर, धातकी खण्ड द्वीप के दोनों महाविदेह क्षेत्रों में 8 और पुष्करार्द्ध द्वीप के दोनों महाविदेह क्षेत्रों में 8 इस प्रकार ढाई द्वीप में कुल मिलाकर जघन्य 20 विहरमान तीर्थंकर समकालीन अवश्यमेव सदा ही विद्यमान रहते हैं। यदि अधिक से अधिक हो तो पाँचों महाविदेह क्षेत्र की सभी 160 विजयों में एक साथ एक-एक तीर्थंकर हो सकते हैं। जिससे 160 तीर्थंकर होते हैं। यदि उसी समय में ढाई द्वीप के पाँच भरत और पाँच ऐरवत इन दस क्षेत्रों में भी प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर हों तो कुल मिलाकर 160 + 10 = 170 तीर्थंकर जी उत्कृष्ट रूप में एक साथ हो सकते हैं।

प्र.90 सिद्धों के 14 प्रकार कौन-कौन से हैं?

उ. 1. स्त्रीलिंग सिद्ध, 2. पुरुषलिंग सिद्ध, 3. नपुंसकलिंग सिद्ध, 4. स्वलिंग सिद्ध, 5. अन्यलिंग सिद्ध, 6. गृहस्थलिंग सिद्ध, 7. जघन्य अवगाहना, 8. मध्यम अवगाहना, 9. उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध, 10. ऊर्ध्वलोक, 11. अधोलोक 12. तिर्यक् लोक में होने वाले सिद्ध, 13. समुद्र में तथा 14. जलाशय में होने वाले सिद्ध।

प्र.91 चौथे आवश्यक में कभी बायाँ, कभी दायाँ घुटना ऊँचा क्यों करते हैं?

उत्तर- चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक है। इसमें व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना एवं व्रत-धारण की प्रतिज्ञा का स्मरण किया जाता है। व्रतों की आलोचना के लिये मन-वचन-काया से विनय-अर्पणता आवश्यक है। बायाँ घुटना विनय का प्रतीक होने से व्रतों में लगे हुए अतिचारों की आलोचना के समय बायाँ घुटना खड़ा करके बैठते अथवा खड़े होते हैं। श्रावक सूत्र में व्रत-धारण रूप प्रतिज्ञा की जाती है। प्रतिज्ञा-संकल्प में वीरता की आवश्यकता है। दायाँ घुटना वीरता का प्रतीक होने से इस समय में दायाँ घुटना खड़ा करके व्रतादि के पाठ बोले जाते हैं।

प्र.92 'करेमि भन्ते' पाठ को प्रतिक्रमण करते समय पुनः पुनः क्यों बोला जाता हैं?

उत्तर- समभाव की स्मृति बार-बार बनी रहे, प्रतिक्रमण करते समय कोई सावद्य प्रवृत्ति न हो, राग-द्वेषादि विषम भाव नहीं आये, इसके लिये प्रतिक्रमण में करेमि भन्ते का पाठ पहले, चौथे व पाँचवें आवश्यक में कुल तीन बार बोला जाता है।

प्र.93 कायोत्सर्ग आवश्यक क्यों है?

उ. अविवेक व असावधानी से लगे अतिचारों से ज्ञानादि गुणों में जो मलिनता आती है, उसे निकालने के लिये, देह सुख की ममता छोड़कर कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। इससे हमारे आत्मिक गुण शुद्ध-निर्मल बनते हैं।

प्र.94 आवश्यक सूत्रों के छह आवश्यकों का (भेदों का) क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया है?

उ. आलोचना प्रारंभ करने के पूर्व आत्मा में समभाव की प्राप्ति होना आवश्यक है, अतः सावद्य योग के त्याग रूप पहला सामायिक आवश्यक बताया गया है। सावद्य योगों से विरति रूप मोक्षमार्ग का उपदेश तीर्थंकर प्रभु ने दिया है, अतः उनकी स्तुति रूप दूसरा चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक है। इससे दर्शन विशुद्धि

होती है। तीर्थंकरों द्वारा बताये हुए धर्म को गुरु महाराज ने हमें बताया है। अतः उनको वन्दन कर उनको समर्पित होकर आलोचना करने के लिए तीसरा वन्दना आवश्यक बताया गया है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में जो अतिचार लगते हैं उनकी शुद्धि के लिए आलोचना करने एवं पुनः व्रतों में स्थिर होने रूप चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक है। आलोचना करने के बाद अतिचार रूप घाव पर प्रायश्चित्त रूप मरहम पट्टी करने के लिए पाँचवाँ कायोत्सर्ग आवश्यक बताया गया है। कायोत्सर्ग करने के बाद तप रूप नये गुणों को धारण करने के लिए छठा प्रत्याख्यान आवश्यक बताया गया है।

प्र.95 चौरासी लाख जीवयोनि के पाठ में 18,24,120 प्रकारे मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। ये प्रकार किस तरह से बनते हैं?

उ. जीव के 563 भेदों को 'अभिहया वत्तिया' आदि दस विराधना से गुणा करने पर 5630 भेद बनते हैं।फिर इनको राग और द्वेष के साथ दुगुणा करने से 11260 भेद बनते हैं। फिर इनको मन, वचन और काया इन तीन योगों से गुणा करने पर 33780 भेद होते हैं। फिर इनको तीन करण से गुणा करने पर 101340 भेद बनते हैं। इनको तीन काल से गुणा करने पर 304020 भेद हो जाते हैं। फिर इनको पंच परमेष्ठी और आत्मा इन छह से गुणा करने पर 18,24,120 प्रकार बनते हैं, अतः इस प्रकार मिच्छामि दुक्कड़ं दिया जाता है।

प्र.96 चौरासी लाख जीव योनि के पाठ में बतलाये गये पृथ्वीकाय के सात लाख आदि भेद किस प्रकार बनते हैं?

उ.- चौरासी लाख जीव योनि के पाठ में जीवों के उत्पत्ति स्थान की अपेक्षा से भेद बतलाये गये हैं। उत्पत्ति स्थान वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से युक्त होता है। पृथ्वीकाय के मूल भेद 350 माने जाते हैं। इन भेदों को 5 वर्ण, 2 गन्ध, 5 रस, 8 स्पर्श और 5 संस्थान से अलग - अलग गुणा करने पर पृथ्वीकाय के सात लाख भेद बनते हैं। जैसे 350 x 5 वर्ण = 1750 x 2 गन्ध = 3500 x 5 रस = 17500 x 8 स्पर्श = 1,40,000 x 5 संस्थान = 7,00,000 भेद होते हैं।

इसी प्रकार अप्काय के - 350, तेऊकाय के - 350, वायुकाय के 350, वनस्पतिकाय में सूक्ष्म के - 500, साधारण के 700, बेइन्द्रिय के 100, तेइन्द्रिय के - 100, चौरेन्द्रिय के - 100, देवता के - 200, नारकी के - 200, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के - 200 और मनुष्य के - 700 मूल भेद बतलाये हैं। इन भेदों को उपर्युक्त क्रमानुसार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के भेदों से गुणा करने पर इनके भी इसी प्रकार भेद बनते हैं।

तत्त्व विभाग-

पाँच समिति और तीन गुप्ति का थोकडा

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 24 वें अध्ययन में पाँच समिति और तीन गुप्ति का अधिकार इस प्रकार चलता है :-

समिति- संयम की रक्षा के लिये उपयोग पूर्वक की जाने वाली मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को 'समिति' कहते हैं।

1. **ईर्या समिति, 2. भाषा समिति, 3. एषणा समिति, 4. आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति, 5. उच्चार प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति।**

(1) **ईर्या समितिः-** संयम की रक्षा हेतु चलने फिरने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को ईर्या समिति कहते हैं, **ईर्या समिति के चार कारण हैं- 1. आलम्बन 2. काल 3. मार्ग 4. यतना।**

1. आलम्बन के तीन भेद- 1. ज्ञान 2. दर्शन 3. चारित्र।

2. काल से- दिन को चले (अर्थात् रात्रि में विहार नहीं करे, किन्तु दिन में विहार करे)

3. मार्ग से - कुपथ-को छोड़कर सुपथ पर चले।

4. **यतना के चार भेद : 1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।**

1. **द्रव्य से-** षट्काय के जीवों को तथा काँटा आदि अजीव पदार्थों को देखकर चले।
2. **क्षेत्र से-** झूसरा **प्रमाण**★ अर्थात् चार हाथ सामने देखकर चले।
3. **काल से-** दिन को देखकर व रात्रि में पूँज कर चले।
4. **भाव से-** पाँच इन्द्रियों के विषय और पाँच स्वाध्याय के भेद इन दस बोलों को वर्जकर (टालकर) उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) चले, दस बोल- 1. शब्द 2. रूप 3. गंध 4. रस 5. स्पर्श 6. वाचना 7. पृच्छना 8. परिवर्तना 9. अनुप्रेक्षा और 10. धर्मकथा।

(2) **भाषा समिति-** निरवद्य वचन बोलने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को भाषा समिति कहते हैं। वचन के दोष - 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया, 4. लोभ, 5. हास्य, 6. भय, 7. मौखर्य (वाचालता) और 8. विकथा। इन आठ दोषों में उपयोग रखना अर्थात् एकाग्रता। पूर्वोक्त क्रोधादि की एकाग्रता को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं। **1. क्रोध में एकाग्रता-** जैसे कोई पिता, अति क्रोधित होकर अपने पुत्र के प्रति बोले कि- 'तू

★ टिप्पणी - उत्तरा. 24/6 **'जुगमित्तं तु खेत्तओ'** क्षेत्र से युग-झूसरा प्रमाण। **दंडं धणू जुगं नालिया य अक्खं मुसलं चउहत्थं।** अनुयोग द्वार-प्रमाणाधिकार सूत्र-324 पृष्ठ 237.

छन्नउती अंगुलाइं से एगे दंडे इ वा धणू इ वा जुगे इ वा नालिया इ वा अक्खे इ वा मुसले इ वा। अनुयोग द्वार - सूत्र - 345 तथा समवायांग सूत्र - 96.

भगवती श. 6 उद्दे. 7 में, प्रश्नव्याकरण सूत्र में, स्थानांग सूत्र में और जीवाभिगम सूत्र में युग अर्थात् झूसरा प्रमाण का अर्थ चार हाथ मिलता है। अभिधान राजेन्द्र कोष भाग-4 पृष्ठ 1567 में - **हस्तचतुष्क परिमाणे। चतुर्हस्त प्रमाणे युगे -** (प्रवचन सारोद्धार- 104 द्वार) में भी चार हाथ का उल्लेख होने से **"क्षेत्र से-चार हाथ सामने देख कर चले",** ऐसा परिवर्तन किया गया है।

मेरा पुत्र नहीं है' और पास में खड़े हुए मनुष्यों को कहे कि 'बांधो बांधो इसे' इत्यादि। 2. **मान में एकाग्रता**- जैसे कोई पुरुष अभिमान से गर्वित होता हुआ बोले कि - 'जाति आदि में मेरी बराबरी करने वाला कोई नहीं है।' 3. **माया में एकाग्रता**- जैसे कोई पुरुष अनजान जगह रहा हुआ दूसरों को ठगने के लिए पुत्रादि के विषय में बोले कि - 'न तो यह मेरा पुत्र है और न मैं इसका पिता हूँ' इत्यादि। 4. **लोभ में एकाग्रता**- जैसे कोई वणिक् दूसरों की वस्तु को भी अपनी कहे। 5. **हास्य में एकाग्रता**- जैसे कोई मजाक में कुलीन पुरुष को भी अकुलीन कह कर बुलावे। 6. **भय में एकाग्रता**- जैसे किसी ने किसी प्रकार का अकार्य किया और दूसरे ने उससे पूछा कि - 'तू तो वही है जिसने अमुक समय में अमुक अकार्य किया था?' तब वह भय से कहे कि- 'मैं उस समय उस जगह नहीं था' इत्यादि। 7. **मौखर्य में एकाग्रता**- जैसे कोई बकवादी, दूसरों की निंदा करता ही रहे। 8. **विकथा**- (स्त्री आदि कथा) **में एकाग्रता**- जैसे कोई बोले कि अहो! स्त्री के कटाक्ष कैसे हैं ? इत्यादि। इस प्रकार क्रोधादि में एकाग्रता होने पर प्रायः शुभ भाषा नहीं बोली जाती। इसलिए इन पूर्वोक्त आठ दोषों को छोड़ कर बुद्धिमान् साधु को निरवद्य (निर्दोष) और अवसर देख कर परिमित वचन बोलने चाहिएँ।

भाषा समिति के चार भेद- 1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से**- सावद्य भाषा 1. कठोर, 2. कर्कश, 3. छेदक, 4. भेदक, 5. निश्चयात्मक, 6. सावद्य, 7. क्लेशोत्पादक और 8. मिश्र, इन आठ भाषाओं को छोड़कर साधु निरवद्य भाषा बोले।

(**प्रासुक** अर्थात् जो जीवों से रहित बन चुकी है, अचित्त बनी हुई है। ऐसी आहार आदि सामग्री ग्रहण करना। **एषणीय**- उद्गम, उत्पादन और शंकित आदि के ४२ दोषों को टाल कर आहार आदि ग्रहण करना। **कल्पनीय**- साधु की कल्प मर्यादा के अनुसार आहार आदि ग्रहण करना। स्तनपान कराती हुई स्त्री से, गर्भवती स्त्री से आहार आदि लेना, घर के आगे भिखारी, गाय, कुत्ते आदि खड़े होने पर भी उस घर से आहार आदि लेना अकल्पनीय है।)

2. **क्षेत्र से**- (रास्ते) मार्ग में चलता हुआ नहीं बोले।
3. **काल से**- प्रहर रात्रि बीतने पर (सूर्योदय तक) जोर से नहीं बोले।
4. **भाव से**- उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) बोले।

(3) **एषणा समिति**- 42 दोष टालकर भिक्षा आदि लेने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को एषणा समिति कहते हैं।

एषणा समिति के तीन भेद - **1. गवेषणैषणा 2. ग्रहणैषणा 3. परिभोगैषणा।**

1. **गवेषणैषणा**- आहार आदि ग्रहण करने के पहले शुद्धि - अशुद्धि की खोज करना गवेषणैषणा है।
2. **ग्रहणैषणा**- आहारादि ग्रहण करते समय शुद्धि - अशुद्धि का ध्यान रखना ग्रहणैषणा है।
3. **परिभोगैषणा**- आहारादि भोगते समय शुद्धि - अशुद्धि का उपयोग रखना परिभोगैषणा है।

गवेषणैषणा के चार भेद -1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से**- योग्य कल्पनिक - प्रासुक वस्तु की गवेषणैषणा करे।
2. **क्षेत्र से**- दो कोस के क्षेत्र में गवेषणैषणा करे।
3. **काल से**- दिन को गवेषणैषणा करे, रात्रि को नहीं करे।
4. **भाव से**- 32 दोष रहित गवेषणैषणा करे।

16 उद्गम के और 16 उत्पादना के, ये गवेषणैषणा के 32 दोष इस प्रकार हैं :-

उद्गम के 16 दोष- देने वाले दाता के निमित्त (कारण) से लगते हैं।

गाथा-

आहाकम्मुद्देसिय, पूईकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा, पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ।।1।।
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्ने मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ।।2।।

1. **आहाकम्म-** साधु के निमित्त छः काय का आरंभ कर बना हुआ आहार आदि लेवे तो आधाकर्मी दोष।
2. **उद्देसिय-** जिस साधु के निमित्त जो आहार आदि बनाया है, उसे वही साधु लेवे तो आधाकर्मी और अन्य साधु लेवे तो औद्देशिक दोष।
3. **पूईकम्मे-** सूझते आहार में आधाकर्मी का अंश मात्र भी मिल जाय तथा हजार घर के आंतरे आधाकर्मी आहार का अंश मात्र भी मिल जाय और वह लेवे तो पूर्तिकर्म दोष।
4. **मीसजाए-** गृहस्थ अपने और साधु के लिये शामिल बनाकर देवे तो मिश्रजात दोष।
5. **ठवणा-** साधु के निमित्त अशनादि आहार स्थापना कर रखे, अन्य को नहीं देवे तो स्थापना दोष।
6. **पाहुडियाए-** साधु के लिये मेहमानों को आगे-पीछे करे तो प्राभृतिक दोष।
7. **पाओअर-** अंधेरे में प्रकाश करके अथवा अंधेरे से उजाले में लाकर देवे तो प्रादुष्करण दोष।
8. **कीय-** साधु के निमित्त खरीद कर देवे तो क्रीत दोष।
9. **पामिच्चे-** साधु के निमित्त उधार लाकर देवे तो प्रामृत्य दोष।
10. **परियट्टिए-** साधु के निमित्त अपनी वस्तु देकर बदले में दूसरी वस्तु लाकर देवे तो परिवर्तित दोष।
11. **अभिहडे-** साधु के निमित्त सामने लाकर देवे तो अभिहृत दोष।
12. **उब्भिन्ने-** लेपनादि-ढक्कन आदि अयतना से खोलकर देवे तो उद्भिन्न दोष। अथवा पीछे जिसका लेपन-ढक्कन आदि अयतना से लगाया जाय वैसा आहारादि देना।
13. **मालोहडे-** सीढ़ी-निसरणी आदि लगाकर ऊँचे, नीचे, तिरछे आदि स्थान से जिससे अयतना होवे, वहाँ से वस्तु निकालकर देवे तो मालापहृत दोष।
14. **अच्छिज्जे-** निर्बल से सबल जबरदस्ती छीन कर देवे तो आच्छेद्य दोष।
15. **अणिसिट्ठे-** दो के शामिल की वस्तु एक दूसरे की बिना आज्ञा के देवे तो अनिःसृष्ठ दोष।
16. **अज्झोयरए-** बनते हुए आहारादि में साधु को आया जानकर उसकी मात्रा में बढ़ोतरी कर दे तो अध्यवपूरक दोष।

उत्पादना के 16 दोष- ये दोष जीभ की लोलुपता वश साधु लगाते हैं।

गाथा- *धाई दूई निमित्ते य, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।*
कोहे माणे माया लोहे, य हवंति दस ए ए ।।3।।
पुव्विपच्छासंथवं, विज्जा मंते य चुण्ण जोगे य।

उप्पायणाई दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ।।4।।

1. **धाई-** धाय माता की तरह बालक आदि को खिलाकर आहारादि लेवे तो धात्री दोष।
2. **दूई-** दूति की तरह संदेश पहुँचा कर आहारादि लेवे तो दूति दोष।
3. **निमित्ते-** निमित्त-ज्ञान से भूत-भविष्य-वर्तमान काल के लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरणादि बतलाकर आहार आदि लेवे तो निमित्त दोष।
4. **आजीव-** अपनी जाति-कुल आदि बताकर आहारादि लेवे तो आजीव दोष।
5. **वणीमगे-** रंक-भिखारी की तरह दीनपन से माँगकर आहारादि लेवे तो वनीपक दोष।
6. **तिगिच्छे-** वैद्य की तरह चिकित्सा करके आहारादि लेवे तो चिकित्सा दोष।
7. **कोहे-** क्रोध करके गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखला कर आहारादि लेवे तो क्रोध दोष।
8. **माणे-** मान करके आहारादि लेवे तो मान दोष।
9. **माया-** कपटाई (माया) करके आहारादि लेवे तो माया दोष।
10. **लोहे-** लोभ करके अधिक आहारादि लेवे अथवा लोभ बतलाकर लेवे तो लोभ दोष।
11. **पुव्विपच्छासंथवं-** पहले या पीछे दाता की प्रशंसा करके आहारादि लेवे तो पूर्व पश्चात् संस्तव दोष।
12. **विज्जा-** जिसकी अधिष्ठात्री देवी हो अथवा जो साधना से सिद्ध की गई हो, उसे विद्या कहते हैं। ऐसी विद्या के प्रयोग से आहारादि लेवे तो विद्या दोष।
13. **मंते-** जिसका अधिष्ठाता देव हो अथवा जो बिना मात्रा के अक्षर विन्यास मात्र हो, उसको मंत्र कहते हैं। ऐसे मंत्र के प्रयोग से आहारादि लेवे तो मन्त्र दोष।
14. **चुण्ण-** एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु मिलाने से अनेक तरह की सिद्धि होती है। ऐसे अंजनादि के प्रयोग से आहारादि लेवे तो चूर्ण दोष।
15. **जोगे-** लेपनादिक सिद्धि(जिसका लेप करने से आकाश में उड़ना, जल पर चलना आदि हो) बतलाकर आहार आदि लेवे तो योग दोष।
16. **मूलकम्मे**- गर्भस्तंभन, गर्भाधान, गर्भपातादि ऐसी जड़ी-बूँटी दिखलाकर अथवा औषध बतलाकर आहारादि लेवे तो मूलकर्म दोष।

2. ग्रहणैषणा के 4 भेद -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. **द्रव्य से**- योग्य कल्पनिक-प्रासुक वस्तु को ग्रहण करे।
2. **क्षेत्र से**- दो कोस के क्षेत्र में से ग्रहण करे।
3. **काल से**- दिन में देखे हुए पाट-पाटलादि रात्रि को भी ग्रहण कर सकते हैं।
4. **भाव से**- शंकितादि दस दोष रहित ग्रहण करे।

दस दोष इस प्रकार हैं :-

10 दोष - ये गृहस्थ तथा साधु दोनों को लगते हैं।

गाथा- ***संकिय मक्खिय निक्खित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मीसे।***
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसण दोसा दस हवंति।।

1. **संकिय-** गृहस्थ अथवा साधु को शंका हो जाने के बाद आहारादि लेवे तो शंकित दोष।
2. **मक्खिय-** सचित्त पानी से हाथ की रेखा, बाल भीगें हों, उसके हाथ से आहारादि लेवे तो म्रक्षित दोष।
3. **निक्खित्त-** सचित्त वस्तु पर रक्खा हुआ निर्दोष आहारादि लेवे तो निक्षिप्त दोष।
4. **पिहिय-** निर्दोष वस्तु सचित्त से ढँकी हो, वह लेवे तो पिहित दोष।
5. **साहरिय-** सचित्त वस्तु जिस बर्तन में पड़ी हो, वह वस्तु दूसरे बर्तन में डालकर, उसी बर्तन से योग्य आहारादि लेवे तथा पश्चात् कर्म होने की सम्भावना हो उस घर से आहार लेवे तो साहृत दोष।
6. **दायग-** अंधा, लूला, लंगड़ा आदि से (अयतना से अथवा अयतना करता बहरावे) लेवे तो दायक दोष।
7. **उम्मीसे-** मिश्र वस्तु लेवे तो उन्मिश्र दोष।
8. **अपरिणय-** बिना शस्त्र परिणत(पूरा अचित्त न बना हुआ) लेवे तो अपरिणत दोष।
9. **लित्त-** तुरन्त की लीपी हुई भूमि आदि हो उस पर से जाकर आहारादि लेवे तो लिप्त दोष।
10. **छड्डिय-** अशनादि का छाँटा(बूँद) गिरता होवे और लेवे तो छर्दित दोष।

3. परिभोगैषणा के चार भेद -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव

1. **द्रव्य से-** आहार, उपासरा, वस्त्र, पात्र आदि निर्दोष भोगवे।
2. **क्षेत्र से-** सर्व क्षेत्र में।
3. **काल से-** पहले प्रहर का आहार-पानी चतुर्थ प्रहर में नहीं भोगवे।
4. **भाव से-** माँडला के पाँच दोष टालकर उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित) भोगवे।

पाँच दोष इस प्रकार हैं :-

5 दोष - ये साधु को आहार करते समय लगते हैं :-

1. **संजोयणा-** अच्छा स्वाद या गंध उत्पन्न करने के लिए संयोग मिलाना संयोजना दोष है।
2. **अपमाणं-** तृष्णा अथवा जिह्वा के स्वाद के लिए खुराक (प्रमाण) से अधिक आहार करना अप्रमाण दोष है।
3. **इंगाले-** भोजन में गृद्ध होकर उसके स्वाद की प्रशंसा करते हुए खाना इंगाल दोष है।
4. **धूमे-** प्रतिकूल रूप, रस और गंध की निंदा करते हुए घृणा से भोजन करना धूम दोष है।
5. **कारणे-** साधु 6 कारण से आहार करे व 6 कारण से आहार छोडे, इनके विपरीत करे तो कारण दोष।

आहार करने के 6 कारण - साधु 6 कारणों से आहार करते हैं -

गाथा- ***वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।***

तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए।।

1. क्षुधा वेदनीय की शान्ति के लिये।
2. गुरु, ग्लान, नवदीक्षित, तपस्वी आदि की वैयावृत्त्य के लिये।
3. मार्ग आदि की शुद्धि के लिये।
4. संयम की रक्षा के लिये।
5. प्राणों की रक्षा के लिये।
6. धर्म का चिन्तन - मनन करने के लिये।

आहार छोड़ने के 6 कारण - साधु 6 कारणों से आहार छोड़ते हैं -

गाथा- *आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बम्भचेर गुत्तीसु।*
पाणिदया तवहेउं, सरीर वोच्छेयणट्ठाए ।।

1. शूलादि रोग उत्पन्न होने पर।
2. देवता, मनुष्य, तिर्यंच संबंधी उपसर्ग उत्पन्न होने पर।
3. ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए।
4. प्राणियों की रक्षा के लिए।
5. तपस्या करने के लिये।
6. शरीर का त्याग करने के लिए।

4. आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति - भण्डोपकरण लेने और रखने में प्रतिलेखन और प्रमार्जन की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति करने को आदान भाण्ड-मात्र निक्षेपणा समिति कहते हैं। इसके चार भेद हैं-

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. द्रव्य से- उपधि देखकर व पूँजकर रखे तथा लेवे।

2. क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र में।

3. काल से- जीवन पर्यन्त।

4. भाव से- उपयोग सहित। (राग -द्वेष रहित)

उपधि के दो भेद- 1. औधिक 2. औपग्रहिक।

1. **औधिक**- अर्थात् सामान्य उपधि जो हमेशा पास रखी जावे, जैसे- रजोहरण, वस्त्र, पात्र आदि गृहस्थ से लेवे एवं भोगे।
2. **औपग्रहिक** - प्रतिहारिक उपधि जो गृहस्थ से पाट-पाटलादि कारण से लेवे, भोगे एवं कार्य होने के बाद वापस लौटावे।

5. उच्चार प्रस्रवण खेल-जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति - स्थण्डिल के 10 दोषों को टालकर विधिपूर्वक परठने की सम्यक् (निर्दोष) प्रवृत्ति को उच्चार - प्रस्रवण - खेल - जल्ल - सिंघाण

परिष्ठापनिका समिति कहते हैं। इसके चार भेद हैं -

1. द्रव्य 2. क्षेत्र 3. काल 4. भाव।

1. द्रव्य से - उच्चारादि परठने की वस्तु। (परठने की आठ वस्तु -1. उच्चार-मल 2. प्रस्रवण-मूत्र 3. खेल-बलगम 4. सिंघाण - श्लेष्म-सेडा 5. जल्ल-शरीर का मेल 6. आहार-पानी 7. उपधि-जीर्ण वस्त्रादि, पाटादि 8. देह व अन्य वस्तु - गोबर, राख, केशादि)

2. क्षेत्र से - योग्य प्रासुक क्षेत्र में परठे।

3. काल से - दिन को देखकर रात्रि में पूँजकर परठे।

4. भाव से - दस प्रकार की स्थंडिल भूमि में परठे।

दस प्रकार की स्थंडिल भूमि-

1. गृहस्थ आवे नहीं, देखे नहीं। आवे नहीं, देखे है। आवे हैं, देखे नहीं। आवे है, देखे है। इन चार भंगों में प्रथम भंग परठने हेतु उत्तम है।
2. आत्मा (शरीर-विराधना) जीव (छह काय-विराधना) तथा प्रवचन (शासन की निन्दा) का उपघात हो, ऐसे स्थान पर नहीं परठे।
3. समभूमि पर परठे।
4. पोलार रहित अथवा तृणादि के आच्छादन से रहित भूमि पर परठे।
5. थोड़े काल की अचित्त हुई भूमि पर परठे।
6. जघन्य एक हाथ चौरस भूमि पर परठे।
7. नीचे चार अंगुल अचित्त भूमि पर परठे।
8. ग्राम-नगर-उद्यानादि के अत्यन्त निकट न परठे।
9. चूहे के बिल आदि रहित भूमि पर परठे।
10. त्रस प्राणी तथा बीजादि रहित भूमि पर उपयोग सहित परठे।

गुप्ति का स्वरूप-

मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोककर आत्म-गुणों की सम्यक् प्रकार से रक्षा करने को 'गुप्ति' कहते हैं। गुप्ति तीन प्रकार की होती है- **मनो गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति।**

मनोगुप्ति-

मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना 'मनोगुप्ति' है। मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है:- **1. सत्या 2. मृषा 3. सत्यामृषा तथा 4. असत्यामृषा।**

संरंभ- दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार करना। जैसे- मैं ऐसा ध्यान करूँगा जिससे वह मर जाये।

समारंभ- दूसरों को हानि पहुँचाने का मानसिक प्रयत्न करना।

आरंभ- दूसरों को मन के तीव्र-अशुभ भावों से हानि पहुँचाना।

मनोगुप्ति के चार भेद - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

द्रव्य से- चार प्रकार की मनोगुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र में।

काल से- जीवन पर्यन्त।

भाव से- उपयोग सहित।

वचन गुप्ति-

वचन की अशुभ (वचन बोलने रूप) प्रवृत्ति को रोकना 'वचन गुप्ति' है। वचन गुप्ति चार प्रकार की होती है - **1. सत्या 2.मृषा 3. सत्यामृषा और 4. असत्यामृषा।**

संरंभ- दूसरों को मारने में समर्थ ऐसे संकल्प को सूचित करने वाला शब्द बोलना।

समारंभ- दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला मन्त्रादि गुनना।

आरंभ- प्राणियों का अत्यन्त क्लेशपूर्वक नाश करने में समर्थ मन्त्रादि गुनना।

वचन गुप्ति के चार भेद- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

द्रव्य से- चार प्रकार की वचनगुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र में।

काल से- जीवन पर्यन्त।

भाव से- उपयोग सहित।

काय गुप्ति-

काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना 'काय गुप्ति' है। चलने, खड़े रहने, बैठने, सोने में तथा कारणवश ऊर्ध्वभूमिका, गड्ढे आदि के उलाँघने में और इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में प्रवृत्ति करता हुआ साधु काय गुप्ति करे।

1. **संरंभ-** यष्टि-मुष्टि आदि से ताड़ना करने के लिये तैयार होना।
2. **समारंभ-** दूसरों को परिताप (पीड़ा) करने हेतु लात वगैरह से प्रहार करना।
3. **आरंभ-** वध करने, जीवन रहित करने की क्रिया करना।

काय गुप्ति के चार भेद- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

1. **द्रव्य से-** काय गुप्ति को संरंभ, समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।
2. **क्षेत्र से-** सर्व क्षेत्र में।
3. **काल से-** जीवन-पर्यन्त।
4. **भाव से-** उपयोग सहित।

॥ पाँच समिति और तीन गुप्ति का थोकड़ा समाप्त॥

यद्यपि पाँच समिति तीन गुप्ति का परिपालन साधु-साध्वियों के लिये है, तथापि अन्य साधक एवं गृहस्थ

भी इनका पालन करके अपने जीवन को संवरमय एवं सुख-शान्तिमय बना सकते हैं।

स्तोत्र विभाग :-

भक्तामर स्तोत्र

1. भक्तामर - प्रणत - मौलिमणि - प्रभाणा -
मुद्योतकं दलित - पापतमो वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा -
वालंबनं भवजले, पततां जनानाम् ।।

भावार्थ- इसमें आध्यात्मिक शक्तिप्राप्त करने के लिए और भाव मंगल की प्राप्ति के लिए इष्ट देव को नमस्कार किया गया है।।1।।

2. यः संस्तुतः सकल - वाङ्मयतत्त्वबोधा -
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक - नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारै :
स्तोष्ये किलाहमपि, तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।

भावार्थ- जिनकी स्तुति द्वादशांग रूप जिनवाणी के ज्ञाता स्वर्गाधिपति इन्द्रों द्वारा बड़े-बड़े विशाल स्तोत्रों द्वारा की गयी है, उन्हीं प्रथम जिनेन्द्र ऋषभदेवजी की मैं भी स्तुति प्रारम्भ करता हूँ।।2।।

3. बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ -
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थित - मिन्दुबिम्ब -
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।।

भावार्थ- जैसे अबोध बालक जल में पड़ी हुई चन्द्रमा की छाया को पकड़ना चाहता है, उसी प्रकार अल्पज्ञ होते हुए भी मैं आपकी स्तुति करने का साहस कर रहा हूँ।।3।।

4. वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र! शशांककांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्तकालपवनोद्धत - नक्र - चक्रं,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम्।।

भावार्थ- जैसे प्रलयकाल में भयानक समुद्र को कोई भुजाओं से पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं भी आपके उज्ज्वल गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ।।4।।

5. सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्त :।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।

भावार्थ- जैसे हरिण अपने बल का विचार न कर प्रीति वश अपने बच्चे को बचाने के लिए शेर के सम्मुख चला जाता है, उसी प्रकार यद्यपि मुझमें शक्ति नहीं है तो भी मैं भक्ति के वश से आपकी स्तुति

करने के लिए तत्पर होता हूँ।।5।।

6. अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरूते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारू - कलिकानिकरैकहेतुः।।

भावार्थ-जैसे कोयल के बोलने में बसन्त ऋतु में आम्र वृक्षों की सुन्दर कलियाँ ही निमित्त होती हैं, वैसे ही आपकी भक्तिमुझे आपकी स्तुति करने में तत्पर कर रही है। अतः इस स्तुति में आपकी भक्तिही एक कारण है।।6।।

7. त्वत्संस्तवेन भवसंतति सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलिनीलमशेष-माशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव - शार्वरमंधकारम् ।।

भावार्थ-जैसे रात्रि में सघन अन्धकार सूर्य की किरणों से नष्ट हो जाता है, वैसे ही आपकी स्तुति से जीवों के अनेक भवों से संचित पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं।।7।।

8. मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफल - द्युतिमुपैति ननूदबिंदुः।।

भावार्थ- जैसे कमलिनी के पत्तों पर रही हुई साधारण जल की बूँद भी मोती की शोभा को प्राप्त करती है, उसी प्रकार आपके प्रभाव से यह स्तोत्र भी सज्जन पुरुषों के चित्त को आकर्षित करेगा अर्थात् उत्कृष्ट काव्यों की श्रेणि में गिना जावेगा।।8।।

9. आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त - दोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरूते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि।।

भावार्थ- जैसे सूर्योदय से पहले उसकी प्रभा से ही कमल खिलने लगते हैं तो पूर्ण सूर्योदय होने पर विकसित होंगे ही इसमें कोई सन्देह नहीं है, इसी प्रकार आपकी चर्चा मात्र से ही पाप नष्ट होने लगते हैं तो आपकी स्तुति से तो होंगे ही। अर्थात् यह स्तोत्र पापों का नाश करने वाला है।।9।।

10. नात्यद्भुतं भुवनभूषण - भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः ।
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।

भावार्थ- हे नाथ ! जैसे उदार स्वामी का सेवक कालान्तर में धनादि की सहायता पाकर अपने स्वामी के समान हो जाता है वैसे ही आपके सेवक भी आपके समान हो जाते हैं।।10।।

11. दृष्ट्वा भवंतमनिमेश ! विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति - दुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत्।।

भावार्थ-जैसे क्षीर समुद्र का मधुर जल पी लेने पर फिर खारा पानी पीना कोई पसन्द नहीं करता वैसे ही जो एक बार आपका दर्शन कर लेता है उसको अन्य देवों के दर्शन से सन्तोष प्राप्त नहीं होता।।11।।

12. यैः शांतरागरूचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललामभूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति।।

भावार्थ- हे भगवन् ! आपका शरीर जिन परमाणु पुद्गलों से बना है वे इस पृथ्वी पर उतने ही थे। वे सारे परमाणु आपके शरीर में समा गये, शेष कुछ भी नहीं बचे। क्योंकि शेष होते तो आपके समान रूपवाला संसार में दूसरा भी होता, किन्तु ऐसा नहीं है।।12।।

13. वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निश्शैष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंक - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम्।।

भावार्थ-आपके तेजस्वी मुख मण्डल को चन्द्रमा से उपमित नहीं किया जा सकता क्योंकि चन्द्रमा में कई धब्बे हैं तथा वह दिन में पलाश के पत्तों की तरह पीला (फीका) और प्रभावहीन हो जाता है। आपके मुखमण्डल के सामने संसार के सब पदार्थ फीके हैं।।13।।

14. सम्पूर्णमंडल - शशांक - कलाकलाप -
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयंति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्।।

भावार्थ-जिन उत्तम गुणों ने आपका आश्रय लिया हे, उन्हें तीनों लोक में विचरण करने से कोई नहीं रोक सकता अर्थात् आपके गुण तीनों लोक में व्याप्त हैं।।14।।

15. चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर् -
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पांतकालमरूता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्?

भावार्थ- प्रलयकाल की हवा से सब पर्वत चलायमान हो जाते हैं, किन्तु सुमेरु पर्वत किंचित् भी चलायमान नहीं होता। ऐसे ही देवांगनाएँ ब्रह्मादि देवों के चित्त को चलायमान कर देती हैं, किन्तु आपके चित्त को डोलायमान करने में वे किंचित् भी समर्थ नहीं है।।15।।

16. निर्धूमवर्त्तिरपवर्ज्जित - तैलपूरः,

कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरूतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः।।

भावार्थ- सांसारिक दीपक में धुआँ, बत्ती व तेल होता है तथा पवन उसे बुझा भी सकती है तथा वह एक ही स्थान पर प्रकाश कर सकता है, किन्तु हे नाथ ! आप तीनों लोक को प्रकाशित करने वाले अद्वितीय दीपक हो।।16।।

चौवीसी - मैंने बहुत किये अपराध

मैंने बहुत किये अपराध , नाथ मोहे कैसे तारोगे।
कैसे तारोगे जिनन्द मोहे, कैसे तारोगे ।।मैंने।। टेर।।

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपास ।
चन्दाप्रभुजी ने सुविधि जिनेश्वर, शीतल दो शिववास ।।मैंनें।।1।।

श्री श्रेयांस वासुपूज्य शिवरूँ, विमल विमल मतिवन्त ।
अनन्तनाथ जी ने धर्म जिनेश्वर, शान्ति करो श्री सन्त ।।मैंने।।2।।

कुंथुनाथ प्रभु करुणा सागर, अरनाथ जगदीश।
मल्लिनाथ जी ने मुनिसुव्रत जी, नित्य नमाऊँ शीश ।।मैंने।।3।।

इकवीसवाँ नमिनाथ निरूपम, अरिष्टनेमी जगधार ।
तोरण से प्रभु पाछा फिरिया, शिव रमणी भरतार ।।मैंने।।4।।

पारस-पारस सरिखा प्रभुजी, नावारिस के नाथ ।
वर्धमान शासन के स्वामी, प्रणमूँ जोड़ी हाथ ।।मैंने।।5।।

तुम बिन पायो दुःख अनन्ता, जनम-मरण जंजाल।
'त्रिलोक ऋषि' कहे जिम-तिम करी ने, तारो दीन दयाल ।।मैंने।।6।।

चौवीसी - जय जिनवर जय

(तर्ज- देख तेरे संसार की हालत)

जय जिनवर, जय तीर्थंकर, जय चौबीसी भगवान,
साधु-श्रावक करे प्रणाम।
आप तिरें, औरों को तारे, भरत क्षेत्र भगवान,
साधु श्रावक करे प्रणाम।।टेर।।

ऋषभदेव का कीर्त्तन करते, अजितनाथ को वन्दन करते।
संभवनाथ का नाम सुमरते, अभिनन्दन को चित्त में धरते।
जय सुमति, जय पद्म प्रभु, जय चौबीसी भगवान।।साधु।।1।।

सुपार्श्वनाथ का कीर्त्तन करते, चन्द्र प्रभु को वन्दन करते।
सुविधिनाथ का नाम सुमरते, शीतल प्रभु को चित्त में धरते।
जय श्रेयाँस, जय वासुपूज्य, जय चौबीसी भगवान।।साधु।।2।।

विमलनाथ का कीर्त्तन करते, अनन्तनाथ को वन्दन करते।
धर्मनाथ का नाम सुमरते, शांतिनाथ को चित्त में धरते।
जय कुंथु, जय अरनाथ, जय चौबीसी भगवान।।साधु।।3।।

मल्लिनाथ का कीर्त्तन करते, मुनि सुव्रत को वन्दन करते।
नेमिनाथ का नाम सुमरते, अरिष्टनेमि को चित्त में धरते।
जय पारस, जय महावीर, जय चौबीसी भगवान।।साधु।।4।।

अनन्त सिद्ध का कीर्त्तन करते, विहरमान को वन्दन करते।
गणधर प्रभु का नाम सुमरते, गुरुदेव को चित्त में धरते।
केवल शिष्य विनय करता, जय चौबीसी भगवान।।साधु।।5।।

प्रत्याख्यान के पाठ

(1) **पोरिसिं (एक प्रहर का) सूत्र-** उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

नोट- इसी तरह 'पोरिसी' के स्थान पर 'साड्ढ पोरिसी' बोलने पर साड्ढ (ड्योढ) पोरिसी का पच्चक्खाण होता है।

(2) **एगासणा सूत्र (एकासना)-** उग्गए सूरे एगासणं पच्चक्खामि, तिविहंपि आहारं असणं खाइमं, साइमं अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आकुंचणपसारणेणं, गुरूअब्भुट्ठाणेणं (पारिट्ठावणियागारेणं), महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

(3) **आयंबिल सूत्र (आयम्बिल)-** उग्गए सूरे आयंबिलं पच्चक्खामि अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं लेवालेवेणं, गिहिसंसट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, (पारिट्ठावणियागारेणं) महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : पाँचवी – जैन धर्म चंद्रिका (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) 'खात-खनकर' शब्द का अर्थ है-

(क) दीवार में सेंध लगाना (ख) झूठा उपदेश देना

(ग) कीमती वस्तु (घ) गुप्त बात (क)

(b) ''हिंसाकारी शस्त्र' किस शब्द का अर्थ है-

(क) प्राणातिपात (ख) अधिकरण

(ग) अवयव (घ) वितिगिच्छा (ख)

(c) यंत्रों के काम को कहते हैं -

(क) इंगालकम्मे (ख) वणकम्मे

(ग) साडीकम्मे (घ) इनमें से कोई नहीं (घ)

(d) स्वामी की आज्ञा आदि न होते हुए भी उसकी वस्तु लेना कहलाता है-

(क) प्राणतिपात (ख) परिग्रह

(ग) मृषावाद (घ) अदत्तादान (घ)

(e) किसका आसन शरणागति व विनय का प्रतीक है -

(क) वन्दना (ख) भाव वंदना

(ग) खमासामणो (घ) णमोत्थुणं (ख)

(f) विराधना कितने प्रकार की बताई गई हैं -

(क) 08 (ख) 12

(ग) 10 (घ) 18 (ग)

(g) 5 समिति 3 गुप्ति का थोकड़ा चलता है-

(क) उत्तराध्ययन अध्ययन 21 (ख) उत्तराध्ययन अध्ययन 22

(ग) उत्तराध्ययन अध्ययन 23 (घ) उत्तराध्ययन अध्ययन 24 (घ)

(h) साधु के निमित्त से मेहमानों को आगे-पीछे करना दोष है-

(क)मीसजाए (ख) ठवणा

(ग) पाहुडियाए (घ) पओअर (ग)

(i) भिखारी की तरह दीनपन से मांगकर आहारादि लेना दोष है-

(क)वणीमगे (ख) तिगिच्छे

(ग) आजीव (घ) मूलकम्मे (क)

(j) दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार करना कहलाता है-

(क) संरंभ (ख)समारंभ

(ग) आरंभ (घ) कोई नहीं (क)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) शंकितादि 10 दोष होते हैं। (हाँ)

(b) मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना मनोगुप्ति है। (हाँ)

(c) 'अज्झोयरए' उद्‌गम का दोष है। (हाँ)

(d) 'अधोदिशा' में से सिद्ध होते हैं। (नहीं)

(e) 'बाहुबली' ने बलमद किया था। (नहीं)

(f) जो आत्मा को मलिन करें उसे पाप कहते हैं। (हाँ)

(g) सूत्रागम और तदुभयागम मिलकर अर्थागम कहलाता है। (नहीं)

(h) कषाय का प्रतिक्रमण क्षमापना पाठ से होता है। (हाँ)

(i) नवीन पापों की आलोचना करना प्रतिक्रमण कहलाता है। (नहीं)

(j) जंतपीलणकम्मे सातवें व्रत का अतिचार है। (नहीं)

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं एक ऐसा दोष हूँ जो भोजन में गृद्ध होकर उसके स्वाद की प्रशंसा करते हुए खाने पर लगता हूँ। इंगाले

(b) मैं प्रतिक्रमण का सार पाठ हूँ। इच्छामि ठामि

(c) मेरे द्वारा उत्कृष्ट वंदना की जाती है। इच्छामि खमासमणो

(d) मेरे 563 भेद हैं। जीव

(e) मैंने ऐश्वर्यमद किया था। दशार्णभद्र राजा

(f) मेरा पालन करने से अहिंसा व्रत का पालन होता है। रात्रि भोजन त्याग

(g) मेरा चौथा भेद निद्रा है। प्रमाद

(h) मैं अंधकार का पाठ हूँ। 18 पापस्थान

(I) मेरा अर्थ 'एक-दिन-रात' है। अहोरत्तं

(j) मैं निषेधरूप प्रतिज्ञा हूँ। प्रत्याख्यान/पच्चक्खाण

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। 14x2 = (28)

(a) **इकवीसवाँ.....भरतार। रिक्त स्थान पूरा कीजिए ।**

उ इकवीसवाँ नमिनाथ निरूपम, अरिष्टनेमी जगधार।

तोरण से प्रभु पाछा फिरिया, शिव रमणी भरतार।।

(b) **विमलनाथ.....जय चौबीसी भगवान। रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।**

उ विमलनाथ का कीर्तन करते, अनन्तनाथ को वंदन करते ।

धर्मनाथ का नाम सुमरते, शांतिनाथ का चित्त में धरते।

जय कुंथु, जय अरनाथ, जय चौबीसी भगवान।।

(c) **वचन गुप्ति के समारंभ व काय गुप्ति के समारंभ में अंतर लिखिए।**

उ वचन गुप्ति के समारंभ में दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाला मन्त्रादि गुनना है, जबकि काय गुप्ति के समारंभ में दूसरों को पीड़ा देने हेतु लात वगैरह से प्रहार करना है।

(d) **संयोजना, अपमाणं का अर्थ लिखिए।**

उ संजोयणा- अच्छा स्वाद या गंध उत्पन्न करने के लिए संयोग मिलाना संयोजना दोष है।

अपमाणं- तृष्णा अथवा जिह्वा के स्वाद के लिए खुराक (प्रमाण) से अधिक आहार करना अप्रमाण दोष है।

(e) **कौनसे व्रत में करण योग नहीं हैं व क्यों ?**

उ बारहवें व्रत में साधु-साध्वी को चौदह प्रकार की निर्दोष वस्तुएँ देने तथा भावना भाने का उल्लेख है। पापों के त्याग का वर्णन नहीं होने से इनमें करण-योग की आवश्यकता नहीं है।

(f) **प्रमाद की परिभाषा व भेद लिखिए।**

उ प्रमाद- संवर-निर्जरा युक्त शुभ कार्य में यत्न-उद्यम न करने को प्रमाद कहते है। अथवा आत्म-स्वरूप का विस्मरण होना प्रमाद है।

भेद- 1. मद्य 2. विषय 3. कषाय 4. निद्रा 5. विकथा।

(g) **अकल्पनीय व अकरणीय में अंतर स्पष्ट कीजिए।**

उ अकल्पनीय- सावद्य भाषा बोलना आदि प्रवृत्तियाँ 'अकल्पनीय' हैं।

अकरणीय- अयोग्य सावद्य आचरण करना 'अकरणीय' है।

(h) **निम्न शब्दों के अर्थ लिखिए।**

उ **महुरविहि मधुर फल आदि** **उवाणहविहि जूते मौजे आदि**

धूवविहि धूप अगर तगर आदि **विगयविहि दूध,दही, घी आदि**

(i) **प्रतिक्रमण करने से कोई चार लाभ लिखिए।**

उ **1 लगे दोषों की निवृत्ति होती है।** **2 प्रवचन माता की आराधना होती है।**

3 तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन होता है। **4 व्रतादि ग्रहण करने की भावना जगती है।**

5 सूत्र (आगम) की स्वाध्याय होती है। **6 अशुभ कर्मों के बंधन से बचते है।**

7 अपने दोषों की आलोचना करके व्यक्ति आराधक बन जाता है।

(नोट- इनमें से कोई चार)

(j) **निम्न शब्दों के अर्थ लिखिए।**

उ **जावज्जीवाए- जीवन पर्यन्त** **जावनियमं- जब तक नियम पालूं तब तक**

जाव अहोरत्तं- एक दिन रात पर्यन्त

(k) **चौथी समिति को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से लिखिए।**

उ द्रव्य से- उपधि देखकर व पूँजकर रखे तथा लेवें। क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र से

काल से- जीवन पर्यन्त भाव से- उपयोग सहित (राग-द्वेष रहित)

(l) **भक्तामर की प्रथम गाथा का हिन्दी अर्थ लिखिए।**

उ **अर्थ- इनमें आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करने के लिए और भाव मंगल की प्राप्ति के लिए इष्ट देव को नमस्कार किया गया है।**

(m) **तस्स सव्वस्स पाठ का अर्थ लिखिए।**

उ **तस्स सव्वस्स देवसियस्स** **उन सब दिवस सम्बंधी**

अइयारस्स **अतिचारों का जो**

दुब्भासिय दुच्चिंतिय **दुर्वचन व बुरे चिंतन से**

दुच्चिट्ठियस्स **तथा कायिक कुचेष्टा से किये गये हैं।**

आलोयंतो पडिक्कमामि **उन अतिचारो की आलोचना करता हुआ उनसे अलग होता हूँ।**

(n) **'परिग्रह' किसे कहते हैं ?**

उ किसी भी व्यक्ति एवं वस्तु पर मूर्च्छा, ममत्व होना परिग्रह है। खेत, घर, धन, धान्य, आभूषण, वस्त्र, वाहन, दास, दासी, कुटुम्ब, परिवार आदि का संग्रह रखना बाह्य परिग्रह है व क्रोध-मान-माया-लोभ-ममत्व आदि आभ्यंतर परिग्रह है।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3 = (42)**

(a) **'पोरिसी' ग्रहण करने का पाठ लिखिए।**

उ उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि,

चउव्विहंपि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं,

सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं,

सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

(b) **सामायिक व पौषध में अंतर स्पष्ट कीजिए।**

उ 1 श्रावक-श्राविकाओं की सामायिक केवल एक मुहूर्त यानि 48 मिनट की होती है, जबकि पौषध कम से कम चार प्रहर का (लगभग 12 घंटे का) होता है।

2 सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जबकि पौषध चार और उससे अधिक प्रहर का होने से रात्रि के समय निद्रा ली जा सकती है। प्रतिपूर्ण पौषध में तो दिन में भी चारों आहारों का त्याग रहता है, किंतु देश पौषध में-दया व्रतादि में दिन में अचित्त आहारादि ग्रहण किया जा सकता है। रात्रि में तो चौविहार त्याग होता ही है।

(c) **द्रव्य व भाव प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?**

उ द्रव्य प्रतिक्रमण- उपयोग रहित, केवल परम्परा के आधार पर पुण्य फल की इच्छा रूप प्रतिक्रमण करना अर्थात् अपने दोषों की, मात्र पाठों को बोलकर शब्द रूप में आलोचना कर लेना, दोष-शुद्धि का कुछ भी कुछ भी विचार नहीं करना, ' द्रव्य प्रतिक्रमण' है।

भाव प्रतिक्रमण- उपयोग सहित, लोक-परलोक की चाह रहित, यश-कीर्ति -सम्मान आदि की अभिलाषा नहीं रखते हुए, मात्र अपनी आत्मा को कर्म-मल से विशुद्ध बनाने के लिए जिनाज्ञा अनुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण 'भाव प्रतिक्रमण' है।

(d) **चित्रं किमत्र.....चलितं कदाचित्। रिक्त स्थान पूरा कीजिए।**

उ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्-

नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।

कल्पांतकालमरूता चलिताचलेन,

किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्?

(e) **व्रत व पच्चक्खाण में अंतर स्पष्ट कीजिए।**

उ 1 व्रत विधिरूप प्रतिज्ञा व्रत है, जैसे मैं सामायिक करता हूँ एवं पच्चक्खाण निषेधरूप प्रतिज्ञा है जैसे सावद्य योगों का त्याग करता हूँ।

2 व्रत मात्र चारित्र में ही होते है जबकि पच्चक्खाण चारित्र-तप दोनों में होते हैं।

3 व्रत करण योग के साथ ग्रहण किये जाते हैं जबकि पच्चक्खाण करण योग के साथ भी और इनके बिना भी ग्रहण किये जाते हैं।

4 व्रत में पाठ के अंत में तस्स भंते! पडिक्कमामि, निन्दामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि आता है और पच्चक्खाण में अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि आता है।

(f) **सच्ची बात प्रकट करना अतिचार किन कारणों से माना जाता है ?**

उ स्त्री आदि की सत्य परन्तु गोपनीय बात प्रकट करने से उसके साथ विश्वासघात होता है, वह लज्जित होकर मर सकती है या राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र का आक्रमण आदि हो सकता है। अतः विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा सत्य बात प्रकट करना भी अतिचार है।

(g) **काय गुप्ति के चार भेद स्पष्ट कीजिए।**

उ 1 द्रव्य से- काय गुप्ति को संरंभ,समारंभ तथा आरंभ में बुरे अध्यवसाय रूप नहीं प्रवर्तावे।

2 क्षेत्र से- सर्व क्षेत्र से

3 काल से- जीवन पर्यन्त

4 भाव से- उपयोग सहित।

(h) **आस्तां तव.....विकाशभाञ्जिज्। रिक्त स्थान पूर्ण कीजिए।**

उ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त- दोषं,

त्वत्संकथाति जगतां दुरितानि हन्ति।

दूरे सहस्रकिरणः कुरूते प्रभेव,

पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि।।

(i) **10 प्रकार की स्थंडिल भूमि के प्रथम 3 भेद लिखिए।**

उ 1 गृहस्थ आवे नहीं , देखे नहीं। आवे नहीं, देखे है। आवे हैं, देखे नहीं। आवे हैं, देखे हैं। इन चार भंगों में प्रथम भंग परठने हेतु उत्तम है।

2 आत्मा (शरीर-विराधना) जीव (छह काय-विराधना) तथा प्रवचन (शासन की निन्दा) का उपघात हो, ऐसे स्थान पर नहीं परठे।

3 समभूमि पर परठे।

(j) **18,24,120 प्रकारे मिच्छामि दुक्कडं किस प्रकार से दिया जाता है ?समझाइए।**

उ जीव के 563 भेदों को 'अभिहया वत्तिया' आदि दस विराधना से गुणा करने पर 5630 भेद बनते हैं। फिर इनको राग और द्वेष के साथ दुगुणा करने से 11260 भेद बनते हैं। फिर इनको मन,वचन और काया इन तीन योगों से गुणा करने पर 33780 भेद होते हैं। फिर इनको तीन करण से गुणा करने पर 101340 भेद बनते है। इनको तीन काल से गुणा करने पर 304020 भेद बनते हैं। फिर इनको पंच परमेष्ठि और आत्मा इन छह से गुणा करने पर 18,24,120 प्रकार बनते हैं, अतः इस प्रकार मिच्छामि दुक्कड़ं दिया जाता है।

(k) **सिद्धों के 14 प्रकार लिखिए।**

उ 1 स्त्रीलिंग सिद्ध, 2 पुरुषलिंग सिद्ध, 3 नपुंसकलिंग सिद्ध, 4 स्वलिंग सिद्ध, 5 अन्यलिंग सिद्ध, 6 गृहस्थलिंग सिद्ध, 7 जघन्य अवगाहना, 8 मध्यम अवगाहना, 9 उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध, 10 ऊर्ध्वलोक, 11 अधोलोक, 12 तिर्यक् लोक में होने वाले सिद्ध, 13 समुद्र में तथा 14 जलाशय में होने वाले सिद्ध।

(l) **उपसर्ग के समय संथारा कैसे करना चाहिए ?**

उ जहाँ उपसर्ग उपस्थित हो, वहाँ की भूमि पूँज कर बड़ी संलेखना में आये हुए ''नमोत्थुणं से विहरामि''तक पाठ बोलना चाहिए और आगे इस प्रकार बोलना चाहिए ''यदि उपसर्ग से बचूँ तो अनशन पालना कल्पता है, अन्यथा जीवन पर्यन्त अनशन है।

(m) **कौनसा मद किसने किया ?**

उ जाति मद - हरिकेशी ने पूर्वभव में
कुलमद - मरीचि ने
बलमद - श्रेणिक महाराज ने
रूप मद - सनत् कुमार चक्रवर्ती ने
तप मद - कुरगडु ने पूर्वभव में
लाभ मद - संभूम चक्रवर्ती ने
श्रुत मद - स्थूलिभद्र ने
ऐश्वर्यमद- दशार्णभद्र राजा ने।

(n) **जीव की रक्षा हेतु झूठी साक्षी देना उचित है या नहीं ?स्पष्ट कीजिए।**

उ रक्षा की भावना उत्तम है पर रक्षा के लिये भी सापराधी की झूठी साक्षी नहीं देना चाहिये। कदाचित् इससे कभी अन्य निरपराधी की मृत्यु भी हो सकती है। निरपराधी को बचाने के लिये भी झूठी साक्षी देना उचित नहीं है। भविष्य में इससे साक्षी देने वाले का विश्वास उठ जाता है। अतः झूठी साक्षी नहीं देनी चाहिए।